Chapter-5

पंचम - अध्याय

लाल का एकांकी एवं बाल - नाट्य- साहित्य

लाल के नाट्य-कृतित्व की चार दशकों की यात्रा केवल सम्पूर्ण नाटकों की यात्रा ही नहीं है प्रत्युत लघु नाटकों (जिसका प्रमुख रूप उनके एकांकियों में देखने को मिलता है) की भी एक सम-सामयिक यात्रा है। जहां उनके सम्पूर्ण नाटक स्थापित, व्यवसायी नाट्य-कर्मियों द्वारा खेले जाने के लिये रचे जाते रहे हैं वहां उनके एकांकी समय-समय पर व्यवसायी और विशेषकर अव्यवसायी, शौकिया रंगकर्मियों द्वारा खेले जाने के लिये रचे गये हैं। एकांकी लेखन के पीछे यही प्रवृत्ति कार्य कर रही थी जिसका संकेत करते हुए लाल लिखते भी हैं- 'विश्वविद्यालयों में नाट्य-दलों की प्रतिष्ठा विभिन्न कालेजों और छोटे-छोटे कस्बों की अव्यावसायिक नाट्य-दलों की मांगकी पूर्ति के लिये हिन्दी में बहुत बड़ी संख्या में एकांकी नाटकों की रचना हुई।[1] यह कहा जा सकता है कि लाल ने एकांकी लेखन करके उस बड़े अभाव की पूर्ति की जो उनके संपूर्ण नाटकों के अन्दर निहित विशिष्ट बौद्धिक व्यायाम की अपेक्षा के कारण उत्पन्न हो रहा था और जिसके कारण उनके सम्पूर्ण नाटक कभी-कभी साधारण दर्शक की समझ के लिये अप्रासंगिक हो उठते थे। दूसरी ओर ये एकांकी एक प्रकार से सम्पूर्ण नाटकों की रचना का पूर्वाभ्यास भी थे और इस प्रकार अपने नाट्य-कर्म की प्रामाणिकता के लिये एक कसौटी का कार्य भी करने वाले थे। दर्शक को कम समय में बोध-गम्य सहज मनोरंजन प्रदान करने के लिये और इस प्रकार जीवन की आपाधापी से थके मनुष्य के लिये चटपटे, मसालेदार दृश्य और श्रव्य व्यन्जन प्रदान करने की दिशा में एकांकी के माध्यम का प्रयोग लाल की मौलिक दृष्टि थी। हिन्दी एकांकी ~~कम~~ के विकासशील नाट्य-व्यक्तित्व में योग और लाल द्वारा एकांकी-लेखन के पीछे छिपे कारणों की चर्चा प्रथम अध्याय में हो चुकी है। इस प्रकार वस्तु व शिल्प दोनों ही स्तरों पर तत्कालीन एकांकी आन्दोलन के प्रभावों को वहां लक्ष्य किया जा सकता है।

लाल के एकांकियों के विभाजन का लगभग वही आधार है जो उनके संपूर्ण

1- आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच-पृ0 109

नमक्रम नाटकों का है। इनको काल खण्डों में विभाजित कर उन धरातलों को लक्ष्य किया जा सकता है जिन पर ये एकांकी खड़े हुए थे :-

कालखण्ड	एकांकी साहित्य	रचनात्मक धरातल पर विकास
1945-50	ताजमहल के आँसू	धरातल की खोज
1951-60	नाटक बहुरंगी	अयथार्थ धरातल
1961-65	नाटक बहुरूपी	यथार्थ धरातल
1966-75	दूसरा दरवाजा	अनुभूति और कसौटी का धरातल
1976-वर्तमान	खेल नहीं नाटक	कसौटी से प्राप्त अभिव्यक्ति का धरातल

यहाँ ध्यातव्य है कि लाल ने विभिन्न समयों में रचे गये एकांकियों को संग्रह रूप में इस प्रकार संकलित किया है कि प्राय: एक ही अन्तराल में रचे गये एकांकियों को एक संकलन प्राप्त हुआ है। तथापि ये संकलन किसी सूक्ष्म काल-विभाजन की रेखा लेकर नहीं चले हैं। हाँ, उनमें काल-विशेष की समान दृष्टि होने के कारण उन्हें एक ही काल खण्ड में स्थान देने सम्बंधी कोई व्यवधान नहीं है।

'ताजमहल के आँसू' संग्रह के एकांकियों की रचना उस काल से सम्बंधित है जब अभी लाल का नाट्य-व्यक्तित्व निर्माण की भूमिका ही तैयार कर रहा था। इसीलिये इस संकलन के एकांकियों में उनकी सृजनात्मकता की कोई निश्चित धारा देखने को नहीं मिलती है। एक प्रकार से अभी धरातल की खोज ही हो रही थी इस संकलन में संगृहीत एकांकी लाल के किशोर जीवन की सृजनात्मक चेतना के द्योतक हैं। अतएव वय के अनुरूप अति भावुकता और नाटकीयता, शैली में काव्यात्मकता, भाषा और सम्वाद के स्तर पर अति नाटकीयता, ऐतिहासिक चरित्रों में अतिरिक्त उदारता

और आवेग का भराव इन एकांकियों का वैशिष्ट्य है। अर्जुन का वृहन्नला वाला रूप, जहांगीत, औरंगजेब, जहांनारा और युधिष्ठिर के चरित्र इसी कारण ऐतिहासिक या पौराणिक आधार पर न खड़े होकर अति-भावुकता के धरातल पर खड़े दिखायी देते हैं। लाल के प्रारंभिक लेखन की ये वे सीमाएं थीं जो उनके सामने चुनौती बनकर खड़ी थी।

पांचवें दशक के समाप्त होते-होते लाल के अनेक एकांकी रचे जा चुके थे। इनकासम्म सामूहिक प्रकाशन 'नाटक बहुरंगी' नाम से सन् 1960 में हो गया था। इस संकलन के एकांकी अयथार्थ से यथार्थ धरातल की ओर बढ़ने का प्रयत्न करते हैं लेकिन वे इसी द्वन्द्व में अयथार्थ में ही उलझकर रह जाते हैं। देखना यह है कि जीवन के इन बहुरंगी एकांकियों में दृष्टि बोध और मूल्य के स्तर पर कितना यथार्थ है? इस एकांकी संग्रह की एकांकियों का विवेचन दो दृष्टियों से किया जाना अभीष्ट है। प्रथम, वे एकांकियां जिनका सम्बंध प्रेम के जीवन मूल्य से है। ये हैं- 'दो मन चांदनी', 'सुबह से पहले', 'शाकाहारी'। 'दो मन चांदनी' में एक युवक उत्पलदत्त अपनी प्रेयसि ज्योत्सना के रूप का पान अलौकिक रूप से करता दिखाया गया है। चांदनी भी तो अन्तत: ज्योत्सना ही है- इसीलिये उत्पलदत्त उसका पान करता है और उसमें नहाता है। सम्पूर्ण एकांकी अतिमानस धरातल परचलती है- प्रेयसि से मिलना, पीतल की अंगूठी का परस्पर आदान-प्रदान एकांकी को अयथार्थ धरातल पर खड़ा करता है। 'सुबह से पहले' पत्नी और प्रेमिका के अन्तर्द्वन्द्व को सामने लाती है। हरिनाथ(पति), अनुपम और इन्दर(प्रेमी) इस एकांकी के त्रिकोण हैं और संयोग द्वारा अनुपम का अपने पुराने प्रेमी से मिलना और फिर बिना उस प्रेमी को सूचित किये चले जाना प्रेम की संवेदना को अयथार्थ धरातल प्रदान करता है। 'शाकाहारी' में प्रेम-प्रसंग को हास्य-व्यंग्य के मध्य उठाया गया है। इस नाटक का कार्य व्यापार और पात्रों की अति नाटकीयता यथार्थ से बहुत दूर एक गाम्भीर कथ्य का सृजन करनेवाली है। इस बहुरंगी संग्रह की दूसरी एकांकियों में सामाजिक जीवन-सन्दर्भों

को अनुस्यूतकिया गया है। 'मम्मी-ठकुराइन', 'आँलादी का बेटा', 'बाहर का आदमी', 'गली की शान्ति', 'चौथा आदमी' और 'काल-पुरुष और अनन्ता की नर्तकी' ऐसी ही एकांकियाँ हैं। 'मम्मी -ठकुराइन' सामाजिक-यथार्थ का चित्रण करने वाली एकांकी है जिसमें पड़ोसियों के मध्य विरोध के उपरान्त स्नेह और परस्पर सौहार्द की धारा को प्रवाहित होते दिखाया गया है। 'आँलादी का बेटा' हरिजन- परिवारों की अन्तरंग समस्याओं पर रचा गया एकांकी है। जीवन के बहुरंगों में एक यह भी रंग है जो समाज के निम्न वर्ग में देखा जा सकता है। एकांकी जीवन के यथार्थ को चित्रित करने में अधिक तीक्ष्ण हो गयी है। फलत: कहीं -कहीं उसमें अति नाटकीयता अथवा अयथार्थ का समावेश हो जाता है। भीखी का दो अतियों पर खड़ा चरित्र ऐसा ही है। 'बाहर का आदमी' अपराध-समस्या पर आधारित एकांकी है। एकांकी के केन्द्रीय पात्र शांति को देखकर ऐसा लगता है जैसे वह विवेक की अपेक्षा आवेगों द्वारा अधिक संचालित है। इसीलिये शान्ति का डाकू रूप जिस दुर्दान्तता की अपेक्षा करता है वह उसमें नहीं मिल पाती। डाकू के रूप में शांति का परिवर्तन भावात्मक धरातल पर स्थित होने से जीवन-गत यथार्थ की सृष्टि नहीं कर पाता। प्रश्न को आवेगों के मध्य उठाकर उसी के मध्य उसका अन्त कर दिया गया है। 'गली की शान्ति' का सम्बन्ध वेश्या-उद्धार की समस्या से है। बिहारी इस समस्या के निदान के लिये कटिबद्ध है। वह सच्चा जौहरी है जो शान्ति जैसे हीरे को कीचड़ से निकाल कर उसकी मूल्यवत्ता को परखता है। निस्संदेह बिहारी समाज के लिये आदर्श पुरुष है लेकिन वेश्या-समस्या का सम्बंध संस्कारों में बुनियादी परिवर्तन से है जिसके रहते ही हमारे समाज की वेश्यायों का उद्धार हो सकता है। शान्ति की मासी उस परिवर्तन की एक रेखा खींचती अवश्य है किन्तु उसमें रंगों को उकेरना अभी शेष है। तिस पर मासी का अपने दुश्मन की हत्या द्वारा मुक्त होने की बात करना एकांकी में संवेग भर देता है जो इस प्रकार की ठोस धरातल पर स्थित समस्याओं का अयथार्थवादी अन्त है। 'चौथा आदमी' जीवन के अनेक रंगों की एक संश्लिष्ट अभिव्यक्ति है। पहला, दूसरा और तीसरा आदमी इस संसार में स्वार्थजीवी बनकर अपना पेट भरते हैं। साध्य और साधन का अन्तर वहाँ

कोई अर्थ नहीं रखता । चौथा आदमी भी यही करता है लेकिन एक अन्धा फकीर उसे उक्त अर्थ प्रदान करता है । हृदय-परिवर्तन, उसका भोक्ता चौथा आदमी और उसका नियामक अन्धा भिखारी एकांकी को दार्शनिक स्तर पर प्रतिष्ठित करती है । अप्रस्तुत की अभिव्यक्ति प्रतीकों द्वारा- एकांकी की अयथार्थता का परिचायक है । 'कालपुरुष और अजन्ता की नर्तकी' नारी- पुरुष के विश्वास-अविश्वास द्वारा वलयित प्रणय-सूत्रों की कथा है । नारी अपने वर्तमान और अतीत के सभी रहस्यों से पुरुष(पति) को अवगत ~~कराना~~ कराना चाहती है और उसका विश्वास अर्जित करना चाहती है किन्तु पुरुष नारी के भूत, वर्तमान और भविष्य का नियन्ता बन उसे उछालना चाहता है, नचाना चाहता है । पुरुष की यह अहंता नारी को किस सीमा तक तोड़ती है, इसी का चित्रण प्रस्तुत एकांकी में है । सामाजिक जीवन के इस कटु सत्य को प्रतीकों के झीने आवरण में रखकर एकांकीकार ने चामत्कारिकता की सृष्टि की है । चमत्कार के प्रति मोह किसी भी रचनाशील व्यक्तित्व के प्रारंभिक लेखन की एक सहज प्रवृत्ति है जो लाल में भी देखने को मिलती है । लेकिन ऐसा चमत्कार-बिम्बों व प्रतीकों द्वारा- अनुभूति के प्रत्यक्षीकरण में बाधक बन जाते हैं क्योंकि उससे सम्प्रेषण में कठिनाई होती है ।

'नाटक क बहुरंगी' की अन्य तीन एकांकियां 'शरणागत', 'मैं आइना हूँ' और 'जादू कीगाल का' तीन विशेष दृष्टियों से अयथार्थ धरातल के सन्दर्भ में विवेच्य हैं । 'शरणागत' मिथकीय नाट्य- परंपरा की ओर बढ़ने की एक प्रक्रिया है । मिथकीय कथ्य व शिल्प दोनों ही अयथार्थ धरातल के कारण तत्व हैं । यह अयथार्थ ही स्वयं में यथार्थ-चित्रण का लक्ष्य छिपाये रहता है । 'शरणागत' द्वारा एकांकीकार काल-भय अथवा मृत्यु-भय को दर्शन के स्तर पर प्रतिष्ठित करता है । इसी संग्रह का अन्य एकांकी 'मैं आइना हूँ' आज के मानसिक रूप से ग्रस्त युवक की समस्या को चित्रित करता है । वह बाह्य व आन्तरिक दोनों ही रूपों से अशान्त है और क्या चाहता है यह वह भी नहीं जानता । इसीलिये वह मृत्यु आत्महत्या, मानसिक अपराधों जैसी अयथार्थ स्थिति में

जीना चाहता है। ऐसे ही एक युवक शीबू को सही मार्ग दिखाने का कार्य करते हैं- डाक्टर। किन्तु डाक्टर का शीबू को स्नेह देने का जो ढंग है वह नाटकीय अधिक है। इसीलिये डाक्टर का चरित्र अयथार्थ बनकर रह जाता है - 'मैं आइना हूं शीबू! तुम मेरी तस्वीर हो। इस आइने में उनकी भी तस्वीरें आती हैं जो अपराधी हैं, जो घृणा देते हैं। तुम जागो शीबू! जिससे वे अराधी तस्वीरें खो जायं।[1] 'जादू बंगाल का' प्रस्तुत एकांकियों की बहुरंगता का प्रतिनिधित्व करता है। प्रस्तुत एकांकी बाजीगर और उसके खेल के माध्यम से बहुरूप जीवन का आदर्श कराती है। कथ्य के स्तर पर यह एकांकी यथार्थ की ओर एक कदम है लेकिन शिल्प की दृष्टि से यह अयथार्थ धरातल पर खड़ी हुई है।

सन् 1961 से 1965 के अन्तराल में लाल का एक दूसरा एकांकी संग्रह प्रकाशित हुआ था- 'नाटक बहुरूपी'। इसमें संकलित एकांकियों की रचना अवधि पांचवें दशक के उत्तरार्द्ध से लेकर छठे दशक के पूर्वार्द्ध तक की है। अतएव ये एकांकी की एक प्रकार से संक्रमणकालीन धरातल पर रचे गये एकांकी हैं। यह अयथार्थ से यथार्थ की ओर एक संक्रमण कहा जा सकता है। समग्रत: इस संग्रह के एकांकी यथार्थ के धरातल पर खड़े हुए हैं। इस यथार्थ-धरातल की ओर संकेत करते हुए लाल लिखते भी हैं - '------ क्योंकि इसकी रचना तो थीसिस के संघर्ष और कटु विरोध से शुरू होती है- एण्टीथीसिस से। और यह एण्टीथीसिस विचारों के स्तर से नहीं शुरू होता। यह आता है जीवन के कटु गहन और निर्मम अनुभूति से। यह तत्व कुछ नयी कविता में है उससे ज्यादा नयी कहानी में है, पर एकांकी में यह क्यों नहीं आ रहा है, यही इसके पिछड़े पन का सबूत लाता है, एकांकी और साक्षात् जीवन के बीच एक अदृश्य दीवार खड़ी हो गयी है।[2] यहां अदृश्य-दीवार से तात्पर्य अयथार्थ जीवन सम्वेदनों को नाटक में प्रकट करने की

1- मैंआइना हूं- डा० लक्ष्मीनारायण लाल।

2- नाटक बहुरूपी। नाटक और एकांकी नाटक-डा० लाल।

परंपरागत प्रवृत्ति से है। इस प्रवृत्ति से हटकर यथार्थ धरातल पर खड़े होने का ही प्रयास प्रस्तुत संग्रह की एकांकियों में हुआ है। इसे लाल ने इस रूपक द्वारा स्पष्ट किया है - 'वास्तविक एकांकी केमहत्व की तुलना वर्षा के महत्व से की जा सकती है। जो धरती और इन्सान को नया जीवनप्रदान करती है किन्तु जो अन्तत: धरती से आकाश में उठी भाप के बादलों से ही बरसती है।[1]

'नाटक बहुरूपी' संग्रह का प्रथम एकांकी 'गुड़िया' उन परिवारों का यथार्थ चित्रण है जिनमें ममता का स्त्रोत सूख चुका है, जिनमें पिता ही माता के भी दायित्व का वहन करता है। और जहां मध्यवर्गीय परिवार विवाह जैसी समस्या के लिये अनन्त काल तक प्रतीक्षा करने को अभिशप्त हैं। दद्दा ऐसे ही करुण यथार्थ से 'जूझकर टूटे हुए' व्यक्ति का एक उदाहरण है। इसी करुण यथार्थ को एकांकी में अन्त में इस प्रकार प्रकट किया गया है-' अच्छी बात है, आप अवश्य पत्र लिखें। हम अवश्य जीते रहें। क्यों दद्दा ? ठीक है न, क्योंकि हम हर दर्द सह सकते हैं।[2] वरुण वृक्ष का देवता' ऐतिहासिक कथ्य पर आधारित प्रतीकात्मक नाटक है। लेकिन इसकी आत्मा में एक यथार्थ चेतना का समावेश है। 'नाम्व्यंत निकतिप्पंनो निकत्या सुख में धति' द्वारा केकड़े और बगुले के दृष्टान्त के माध्यम से राजनीतिक प्रपंचों के रूप और उसके समाधान का चित्रण किया गया है। चाणक्य की साक्षी में नन्दवंश का चन्द्रगुप्त द्वारा विनाश वरुण वृक्ष के देवता की साक्षी में मछलियों की बगुले के द्वारा की गयी हत्या ही है। लेकिन जैसे केकड़े द्वारा बगुला के अतिचार का निपात हुआ वैसे ही नंदवंशीय सवार्थ सिद्धि ने अन्तत: शकटार को विजित कर लिया है। चाणक्य द्वारा शकटार की बहिन सुवासिनी का अमात्य राक्षस के साथ विवाह कराये जाने का निर्णय एकप्रकार से वरुण वृक्ष के देवता का स्वयं की साक्षी में हुए अतिचारों का प्रायश्चित है। राजनीति का यही मांगल्य पक्ष है, इस ओर दृष्टि दे

1- ~~वही~~ नाटक बहुरूपी / नाटक और एकांकी नाटक / डा० लक्ष्मीनारायण लाल

2- गुड़िया (नाटक बहुरूपी) पृ0 21

नाटककार ने समसामयिक 'चाणक्यों' को यथार्थोन्मुख आदर्श की प्रेरणा प्रदान कर एक दिशा दी है। 'बादल आ गये' प्रेम और विवाह की अनेक कोणों पर स्थित समस्याओं से सम्बंधित एकांकी है। विवाह सूत्रों में बंधकर मीप्रेम की स्वतंत्रता और उसकी स्मृति इस एकांकी का मूल है। यही अतीत बादल बनकर छाने पर एक साथ करुणा और राग की बौछार कर देता है। भावात्मक धरातल पर स्थित यह एकांकी संयोग मिलन के माध्यम से आगे बढ़ती है और एक प्रकार के अयथार्थ धरातल का निर्माण करती है। डा० सरन और दीपा और मानिक व शोभना के अतीत एवं वर्तमान के सूत्र उसे द्वन्द्वमूलक बनाते हैं जो एक प्रकार से परिवर्तनशील समय की संघर्ष जीविता का यथार्थ बोध कराते हैं। 'मीनार की बाहें' विशुद्ध अयथार्थ धरातल पर स्थित है। नीरु की महीप और अनूप के समन्वय द्वारा पौरुष कोपूर्ण रूप से प्राप्त करने की अभिलाषा सामाजिक जीवन में अयथार्थ की सृष्टि करती है। अन्तत: वह एक साधारण नौकरी वाले युवक केदार के साथ गार्हस्थ की सीमाओं में बंध जाती है। व्यावहारिक जीवन उसके स्वप्नों को चूर-चूर कर देता है। यहीं एकांकी अयथार्थ से यथार्थ धरातल पर आ खड़ी होती है। 'हम जागते रहें' चीनी आक्रमण की पृष्ठभूमि पर लिखी देश की आन्तरिक सामाजिक खोखलेपन की यथार्थता का चित्रण करनेवाली एकांकी है। श्रीकान्त इन सामाजिक बुराइयों को उखाड़ फेंकने को कृत-संकल्प हो कर्तव्य की बलि वेदी पर व्यक्तिगत प्रेम का उत्सर्ग करता है। पदमदास के रूप में देश की रुग्ण राष्ट्रीयता और श्रीकान्त के माध्यम से युवा वर्ग की राष्ट्रीय चेतना को यथार्थ रूप में उभारा गया है। 'रावण' पौराणिक सन्दर्भ को लेकर रची गयी एकांकी होने पर भी सामयिक जीवन सन्दर्भों को प्रकाशित करने के कारण 'मिथकीय' परंपरा में आती है। शक्ति को शक्ति द्वारा ही जीता जा सकता है, शत्रु की शक्ति का स्त्रोत ज्ञात होने पर उसे हस्तगत कर उसी के विरुद्ध प्रयुक्त किया जा सकता है - यह राम द्वारा रावण के आराध्य शंकर की उपासना से सिद्ध किया गया है। यहाँ 'प्रभु की भावना न होकर रावण की शक्ति के स्त्रोत को समझने में राम की यथार्थ मानव दृष्टि को समक्ष रखा गया है। 'हंसी की बातें' प्रहसनात्मक मूड को लेकर लिखा गया एकांकी है जिसका कार्य-व्यापार

सहज जीवन-व्यापारके रूप में चलता है। फलत: वह यथार्थ एवं स्वाभाविक है। 'ठण्डी छाया' अपराध मनोवृत्ति पर आधारित एक ऐसे युवक की कथा है जो अपनी पत्नी की आत्महत्या का स्वयं को जिम्मेदार मानता है। पहली पत्नी के साथ प्रताप के सम्बंधों को एक अन्य युवती कान्ती द्वारा ठण्डी छाया बन ग्रस जाना और अपनी प्रेयसि कान्ती की प्रताड़ना इस एकांकी को अयथार्थ धरातल से मुक्त नहीं कर पाती। वस्तुत: यह एकांकी लाल के विद्यार्थी जीवन की प्रारंभिक अवस्था में रचा गया एकांकी है। अतएव इसमें अतिभावुकता और अतिनाटकीयता आना स्वाभाविक है। 'मोहिनी कथा' पति और पत्नी के मध्य रागात्मक धरातल की कुंजी की खोज करनेवाली एकांकी है। दाम्पत्य जीवन की सफलता इस बात में निहित है कि पति-पत्नी के मध्य सम्बंधों को केवल पार्ट-टाइम नहीं समझा जाना चाहिए क्योंकि इससे दोनों में परस्पर अलगाव और बिखराव की भूमिका बनती है। कपूर और मोहिनी इसी बिखराव और अलगाव का दुष्परिणाम प्रस्तुत करते हैं। दाम्पत्य सम्बंधों के मध्य के इस कटु यथार्थ को ही इस नाटक में अभिव्यक्ति मिली है। 'गदर' सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में शासकों की स्वार्थलिप्सा वाले युद्ध की विभीषिका में दबी घुटी जनजीवन की करुण चरित्र को समक्ष करती है। किसान और उसकी पत्नी के पुत्रों के प्रति वियोग को यथार्थवादी धरातल पर चित्रित किया गया है। लोक जीवन की युद्धकालीन मनोवृत्ति कितनी पीड़ादायी होती है- यही यहाँ यथार्थ बोध के साथ प्रकट हुआ है- 'नहीं, नहीं, नहीं। बोल किस राजा बाबू नवाब ने हमें होश में रहने दिया ? बता, किसने हमें अपना समझा ? बोल, हम गदर क्यों नहीं कर सके? हमें कभी यह बन्दूक और तलवार क्यों नहीं दी गयी ? हमारे ही पूत का नाम दुर्बली और दुक्खी क्यों रखा गया ? बोल, किसने आज तक हमें आदमी समझा ? जो उल्टे आज हम उनके लिये आदमी हों ? बोल, जवाब दे मुझे।'[1] वसन्त ऋतु का नाटक'

1- गदर। नाटक बहुरूपी-पृ0 250

यथार्थ धरातल पर स्थित इसलिये कहा जा सकता है क्योंकि यह सामाजिक जीवन के तथ्यों, विवाह सम्बंधों के मध्य व्यावसायिकता आदि को नग्न रूप में समक्ष रखता है। युवक के मालती के साथ विवाह सम्बन्ध को लेकर मालती के पिता का नौकरी की प्राथमिकशर्त जोड़ने के साथ विवाह सम्बंध को लेकर मालती के पिता का नौकरी की प्राथमिकशर्त जोडने की बात कहना आज के मध्यवर्गीय समाज की सबसे बड़ी विडम्बना है। इसी विडम्बना का चित्रण एकांकी को यथार्थोन्मुख बनाता है।

सन् 1966 से 1975 के मध्य रचे गये एकांकियों का संग्रह 'दूसरा-दरवाजा' नाम से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह के एकांकी रचनाकार के यथार्थ-प्रेक्षण से उत्पन्न मानसिक धरातल पर कटु-तिक्त अनुभूतियों के प्रस्तुतीकरण को स्थान देते हैं। यहाँ आनुभूतिक धरातल पर एकांकीकार के लिये रंगमंच अनुभव की कसौटी प्रदान करता है।- '------ यह मुझमें अन्धकार जगाता है। मेरे भीतर छिपे न जाने कितने युगों की कुण्ठाएं, वासनाएं उजागर करता है और मुझे भयभीत कर देता है। पर दूसरे ही क्षण यह मुझे मेरे व्यक्तित्व को नये अर्थ देने लगता है।[1] रंगमंच का यह अनुभव ही नाटककार के लिये उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की कसौटी बन जाता है। वह उसके अन्दर की बहुमुखी प्रवृत्तियों को प्रकाशित करने के लिये कसौटी स्वीकार करना यही करना यही इन एकांकियों की रचना के मूल में अपने नाट्य-व्यक्तित्व के लिए कसौटी स्वीकार करना यही इन एकांकियों की रचना के मूल में है। रंगमंच के माध्यम से मानसिक धरातल पर जीवन के विविध प्रश्न औचित्यानौचित्य के मध्य जूझते हैं और इस प्रकार निर्णय तक पहुंचने के लिये प्रेक्षक को जागरूक करते हैं।

'दूसरा दरवाजा' एकांकी संग्रह का प्रथम एकांकी 'केवल तुम और हम' गुण्डे हरिसिंह, टोटू और टोनू जैसे जीवन गत कटु और ओढ़े गये यथार्थ की कसौटी पर हेमा, रीता, जया आदि जैसी रुग्ण भारतीयता को कसनेवाली एकांकी है। ~~कसनेवाली~~

1- दूसरा दरवाजा-पृष्ठ-6

है। उनका जीवन जिस आधारहीन पश्चिमी अन्धानुकरण पर टिका है वह अन्तत: उन्हें यह अनुभव देता है कि वे स्वतंत्र नहीं प्रत्युत अब तक अपने संस्कारों के अन्दर पिंजरबद्ध हैं। उनके समस्त क्रिया व्यवहार, बहादुरी और अहमत्व किसी अन्य के द्वारा संचालित है और वे मात्र 'टूल्स' हैं। यह एकांकी आज की युवापीढ़ी के आन्तरिक खोखलेपन से साक्षात्कार कराती है और 'पैरासाइट' बनने से बचने का आह्वान करती है - 'हे हे हे हे। चचा च चाचा। वह भूठा था हरिसिंह। जैसे हमारे टोटू डैम भूठे थे। सच केवल तुम हो---- तुम।केवल तुम और हम।[1] इस एकांकी संग्रह का दूसरा एकांकी 'दूसरा दरवाजा' युवा पीढ़ी केहीप्रश्न को एक दूसरे कोण से देखने का प्रयत्न है। आज की विषम राष्ट्रीय परिस्थितियों में हमारे समक्ष सबसे बड़ा प्रश्न है व्यवस्था के अन्दर स्वयं को खपाने का है। इस व्यवस्था के दो रूप हैं। प्रथम रूप हमसे राष्ट्रीय गौरव,अनुशासन,योग्यता आदि की आडम्बरपूर्ण मांग करता है। लेकिन इस व्यवस्था का दूसरा रूप इससे सर्वथा विपरीत बात कहता है- व्यवस्था उसी को अपना अंग बनाना चाहती है जो अवसरवादी है और योग्यता व आदे- आदर्शों को तिलांजलि दे व्यवस्था के हित में स्वयं को समर्पित करता है। ये ही दो दरवाजे हैं जिनके मध्य आज की युवा पीढ़ी अनिश्चय की स्थिति में खड़ी है। पहला मार्ग अनेक कठिनाइयों और चुनौतियों से भरा है। दूसरा मार्ग एक प्रकार का 'शार्टकट' है जिसके लिये अपने अस्तित्व का विगलन करना अत्यन्त आवश्यक है। युवापीढ़ी की इस भ्रान्त मन: स्थिति से साक्षात्कार कराना इस एकांकी का ध्येय है। 'फिर बताऊंगी' एकांकी में सरकारी नौकरियों में फंसे लोगों के जीवन का चित्र प्रस्तुत किया गया है। यहां सरकारी दफ्तरों में व्याप्त जीवन की एकातानता पर व्यंग्य देखने को मिलता है। यहां सभी क्लर्कों की मानसिकता को अनेक रूप में देखने के लिये मालती के चरित्र का संघटन हुआ है।अफसर ही अपने मातहतों के चरित्र के मानक होते हैं। यह प्रस्तुत एकांकी में दर्शाया गया है। एक प्रकार से क्लर्कों की मानसिक स्थिति के साथ साक्षात्कार कराने में मालती कसौटी का कार्य करती है। 'धीरे बहो गंगा' वर्क-टू-रूल हड़ताल को एक छोटे से परिवार के सन्दर्भ में प्रहसन के रूप में देखने

1- केवल तुम और हम- पृ0 38

का प्रयत्न है। इस एकांकी संग्रह के अंतिम दो एकांकी 'हाथी घोड़ा चूहा' और 'काफी हाउस' में इन्तजार' अपने कथ्य, प्रस्तुती-फार्म और रंगमंचीय प्रयोगों की दृष्टि से उल्लेखनीय है। यहाँ केवल उस तीक्ष्ण अनुभूति से परिचय की आवश्यकता है जो चरित्रगत संघटन के रूप में तैयार कसौटी के माध्यम से उभरती है। 'हाथी घोड़ा चूहा' व्यवस्था का अंग होने और उससे बाहर होने- दोनों ही स्थितियों का तुलनात्मक चित्रण प्रस्तुत करती है। अफसरशाही से यहाँ जब साक्षात्कार किया जाता है तो उसके 'सिमटम्स' पशुओं जैसे प्रकट होते हैं। दूसरी ओर इसी तथ्य को 'आगन्तुक' के सन्दर्भ में भी देखा जा सकता है। जब तक आगन्तुक अफसरशाही से दूर रहता है, उसमें मनुष्यता बनी रहती है लेकिन जैसे ही वह उसका अंग बनता है, वह भी अपना विवेक खोकर उसी व्यवस्था का अंग बन जाता है। यही आज की नौकरशाही की विडम्बना है जिससे साक्षात्कार कराने में एकांकीकार का स्वर बड़ा ही तीक्ष्ण और मारक हो गया है - न

नौकर- मुंह बन्द करो बहिन जी! सुनो, मैं बताता हूं। सन् 1955 में इसने बी०ए० पास किया थर्ड-क्लास में---- तब से यह बेकार है----- कहीं कोई नौकरी नहीं मिली।

पहला अफसर- ओह! यह बात। मैं देता हूं इसे नौकरी!

दूसरा अफसर- मैं अभी देता हूं अप्वाइण्टमेण्ट लेकर।

तीसरा ~~अफसर~~ अफसर- यह लो नौकरी।

(आगन्तुक तीनों कागजों को मुंह में डालकर खाने लगता है।)

सभी- (घबड़ा जाते हैं) यह क्या करता है--- क्या करता है?

नौकरी- बीस साल का भूखा है साहब!

सभी- यह मर जायेगा--- थूक दे।

(आगन्तुक में धीरे-धीरे घोड़े, चूहे और हाथी तीनों के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। सब भागते हैं।)

नौकर- डरिये नहीं,--- कोई डर नहीं। इसे एक साथ तीन नौकरी मिल गयी हैं।[1]

1- हाथी घोड़ा चूहा-दूसरा दरवाजा- पृ0 136-137

'काफी हाउस में इन्तजार' सत्ता और उसके इर्द-गिर्द मण्डराती जन शक्ति के शनै: शनै: नि:शेष हो जाने की कहानी है। सत्ता (जिसे एकांकी में सज्जन पुरुष के रूप में देखा जा सकता है) के द्वारा संचालित दो पीढ़ियाँ अपने अपने कर्तव्य बोध में चुक गयी हैं। पहला व्यक्ति इतिहास जीवी बनकर रह जाता है और इस पर भी उसका इतिहास चिन्तन एक प्रकार से नपुंसक हो जाता है। दूसरी ओर, दूसरा व्यक्ति सत्ता-परिवर्तन की बात कहता है और इन्कलाब के स्वप्न देखता है किन्तु उसकी अपनी शक्ति तो सत्ता के हाथों की नकेल बनी हुई है- फलत: उसके विद्रोह में भी अन्तत: ठण्डापन ही है। इन चरित्रों को समय की कसौटी पर कसा गया है और तब यह अनुभूत होता है कि वे स्वयं किसी नवीन इतिहास का निर्माण करने में अक्षम हैं और इन्तजार कर रहे हैं कि कोई उन्हें आकर मुक्ति देगा - 'अन्याय,अत्याचार का घड़ा मुँह तक भर गया है। लोग अब बर्दाश्त नहीं करेंगे। हर चीज की हद होती है। अब रात बीतने को है। नया सूरज उगने को है। हमारे बीच में से कोई एक सहसा उठ खड़ा होगा। और---- और -----'[1]

कसौटी से प्राप्त अनुभव की बेचैनी से त्राण पाने और उस अनुभव द्वारा मार्ग-निर्देश का जो लेखकीय दायित्व है वह केवल मात्र 'देखते' रहना नहीं चाहता है, उस पर अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त भी करना चाहता है। डा0 लाल की रचना में देखने के बाद उस पर अपनी अभिव्यक्ति देने और उसे देखी बात को जीने की प्रक्रिया रही है और एकांकी लेखन में अभिव्यक्ति का यह उन्मुक्त धरातल 'खेल नहीं नाटक' की रचना में मुखर हुआ मिलता है। देखने और उसकी अभिव्यक्ति की अनिवार्यता एकांकीकार के इस कथन में व्यक्त हो उठी है- ' खेलना देखना है, नाटक खेलना जीना है। अपने इन नाटकों से मैंने अनुभव किया है कि नाटक लिखना नहीं, रचना है और इस रचना में देखना और जीना दोनों एक साथ है।[2] ये एकांकियाँ खेल के फार्म में लिखी गयी हैं जो

1- काफी हाउस में इंतजार-पृ0 16

2- खेल नहीं नाटक- पृ0 2

आपातकाल में अपनी बात कहने के एक मौलिक धरातल का निर्माण करने वाली है।

संग्रह में प्रथमएकांकी 'अखबार' प्रचारित बड़ी -बड़ी आदर्श बातों के मुखौटों में छिपी हमारी नैतिक मूल्यहीनता को उखाड़ फेंकने को कृत संकल्प एकांकी है। यहां 'व्यक्ति' नामक चरित्र 'अखबार' के पीछे छिपी वास्तविकता का पर्दाफाश ह करता है - 'अखबारों में मुंह छिपाये-कोई पागल हमें घूर रहा है। हम वह नहीं जो करते हैं। हम वह नहीं जो दीखते हैं। हम वह नहीं जो कहते हैं। ऐसा क्यों हुआ ? ऐसा किसने किया ? अब कहां, कैसे छिपाओगे। नहीं, नहीं।--- हम सब एक दूसरे को पहिचान रहे हैं। तुम सब मुझे पहिचान रहे हो। मैं तुम सबको पहिचान रहा हूं। मैं तब तक तुम सबको घूरता हुआ खड़ा रहूंगा जब तक यहां तुम हो। जब तक यहां मैं हूं, यहां सब कुछ करने को है। यहां जो कुछ हुआ है, हमने किया है।[1] 'परिचय' एकांकी आजादी की सन्तानों की उसविरासत पर एक व्यंग्य है और उससे एक परिचय है जो उन्हें अपने बड़ों से मिली है। यह विरासत है 'एक सुन्दर भविष्य की कल्पना' जो कभी साकार नहीं होती है। आज का युवक अपने पूर्वजों की ही प्रतिच्छवि है। इसे प्रकट करते हुए एकांकी के अन्त में दो चरित्रों का यह परस्पर सम्वाद सटीक है :-

जोशी- हां हां मारो। और मारो।

अनिल- हम स्वप्न हैं। हमें कोई नहीं मार सकता।

जोशी- हम तुम्हारी वही कल्पना हैं- जो तुम होना चाहते ~~इने~~ थे।

~~जोशि-~~
अनिल- गाली क्यों बकते हो ?

जोशी- बेहुदे सवाल क्यों करते हो ?

अनिल- हम तुम्हें देख रहे हैं।

जोशी- पहचान रहे हैं। महसूस कर रहे हैं।

अनिल- हां, हां, हमारा परिचय कुछ नहीं है।[2]

१- अखबार- पृ० २०

२- परिचय- पृ० ३१

'शहर' इस संग्रह का तीसरा एकांकी है जिसमें सम्पन्नता और विपन्नता के मध्य की खाई को नाट्यानुभूति के स्तर पर उभारा गया है। विपन्न परिवारों की भूख उनके लिये एक समस्या है तो दूसरी तरफ ऐसी ही एक भीड़- पीढ़ी पैदा करते रहने की अभिशप्तता भी जो परिवार से शहर और शहर से संपूर्ण देश में फैलती जा रही है। समाज के इस पक्ष पर लक्ष्य करते हुए रचनाकार अभिव्यक्ति के स्वर को यथार्थवाद पर प्रतिष्ठाप्रदान करता है -

'हां, मैंने यह भी कहा था- अगर हमारे निचले अंग में रोग है तो हमारा ऊपर का अंग, वह चाहे जितना साफ सुथरा हो, धनी और अमीरी का हो, वह कभी भी स्वस्थ नहीं रह सकता। यह देश, यह समाज एक वृक्ष की तरह है, अगर इसकी जड़ मजबूत नहीं है तो इसमें कभी कोई फल नहीं लगेगा।[१] विपन्नता की इस समस्या से समाज को प्रभावित करती है-

राज- मत खोलना दरवाजा। हर्गिज नहीं।

(दस्तक तेज होने लगती है।)

~~अर्चनाराज-पर-यह-हमारा-घर-है-।-~~

राज- परयह हमारा घर है।

अर्चना- वह भीड़ भी हमारी है।[२]

'अप्रासंगिक' आज की शिक्षा पद्धति, उसकी मूल्य विहीनता और उसकी अप्रासंगिकता की ओर इंगित करनेवाली एकांकी है। युवा-पीढ़ी को मूल्यहीनता या मूल्य-दोनों ओर 'ड्रिफ्ट' करने का दायित्व उस पीढ़ी पर है जो स्वतंत्रता पूर्व की है और जिसे समाज ने युवा-पीढ़ी को निर्देश देने का महत् कार्य सौंपा है। इसी पीढ़ी ने युवा शक्ति को बड़े-बड़े नारेऔर उन नारों में छिपे आदर्श देकर उन्हें प्रासंगिक बनाना चाहा है। जबकि सत्य यह है कि ये नारे और आदर्श थोथे व अप्रासंगिक हैं, प्रासंगिक

१- शहर- पृ० ४८

२- वही- पृ० ४८

तो युवा-चिन्तन ही है जिसे केवल मार्ग दिखाने की आवश्यकता है । इस अप्रासंगिकता को ही यहां अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है- `अधिकार मांगना विद्रोह नहीं ।अधिकार ले लेना विद्रोह है । पतन छठी शताब्दी से नहीं, उस दिन से शुरू हुआ जिस दिन से हमने मांगना शुरू किया । मांगना । मांगना । वह कोई नहीं देता । कोई नहीं दे सकता । (छात्र बैठकर अपनी कापियों पर नोट लेने लगते हैं) यह क्या करते हो ? यह सब अप्रासंगिक है । प्रासंगिक केवल तुम हो---- केवल तुम----- तुम लोग----- तुम-------`[१] `एक घण्टा` काल बोध और उसमें मनुष्य की महत्वाकांक्षाओं के अचानक बिखर जाने की नियति का चित्रण है । सर्वग्रासी मृत्यु का दर्शक कोई नहीं हो सकता क्योंकि वह प्रलय को जन्म देनेवाली है । यह काल-बोध मनुष्य को कितना भयभीत किये है । और उस भय को छिपाने के लिये सभी मूल्यविहीन बन जाते हैं) इसे अभिव्यक्ति प्रदान करना ही इस एकांकी का ध्येय है । इस अभिव्यक्ति को एकांकीकार ने पहेली के माध्यमसे बूझने का प्रयास किया है ।`नहीं` भय की राजनीति द्वारा बलात संचालित किये जाने की नीति के प्रति एक सम्मिलित विद्रोह है । भय भय द्वारा जो विश्वास बनाया जाता है वह स्थायी नहीं होता । राजनीति के इस रहस्य को अभिव्यक्ति देना इस एकांकी का लक्ष्य है -

पुरुष------ चलो, मैं देता हूं तुम्हें वही विश्वास । मुझे पता है, तुम लोगों के पास सब कुछ है पर विश्वास नहीं है ।

(छठा ,पुरुष के बढ़े हुए हाथ के अनुसार छोटा बड़ा होने लगता है।)

सातवां- नहीं ।

छठा- मुझे विश्वास मिल गया ।

सातवां- नहीं, यह विश्वास नहीं भय है । चलो, मैं देखता हूं यह हाथ ।

(पुरुष का वह हाथ उसे छोटा नहीं कर पाता ।)

सातवां- देखा, यह झूठा है । भय से विश्वास बनाना चाहता है ।[२]

१- अप्रासंगिक।खेल नहीं नाटक-पृ० ५६

२- नहीं। खेल नहीं नाटक- पृ० ६८

इस संग्रह का अन्तिम 'खेल' (अभिव्यक्ति का यह धरातल डा० लाल की अपनी खोज है।) 'क्रिकेट' आपातकालीन राजनीतिक परिस्थितियों की अपेक्षाकृत ऋजु अभिव्यक्ति है। यहाँ सत्ता की राजनीति की एकछत्रता, मौकापरस्ती और आत्म-रति की अभिव्यक्ति किन्तु अन्तत: उसकी करारी हार को क्रिकेट खेल के प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

लाल के एकांकियों के विभिन्न धरातलों की शोध के पश्चात उनके एकांकियों में निहित वर्ण्य और उसके रंग-अनुष्ठान के विवेचन का प्रश्न उठता है। जैसा कि कहा गया है, एकांकी 'आज के व्यक्ति, समूचे मानव स्वभाव और कर्म प्रेरणाओं के सूक्ष्म संकेत और उद्भावना से लेकर समस्त सामाजिक वैषम्य, संघर्ष, विघटन, परिवर्तन, नये मूल्यों की स्थापना'[१] लेकर ~~समस्त-सामाजिक-वैषम्य,-संघर्ष,-विघटन,-परिवर्तन,-नये~~ चलती है और यथार्थ जीवनके प्रतिनिधित्व के साथ 'रंगमंच की आधुनिकता और उसकी अभिव्यक्ति के लिये कलागत आग्रह' का भी उसमें समान रूप से समावेश होता हैं- यह तथ्य स्पष्ट होता है कि ये ही तत्व एकांकी की समीक्षा के मान हैं। इस दृष्टि से 'जीवन की प्रमुख संवेदना, कुतूहल, जिज्ञासा, आकस्मिकता, चरम-सीमा, संघर्ष, प्रभाव-साम्य(Unity of effect) संकलन-त्रय, आदि को एकांकी- विवेचन का आधार बनाने के लिये समग्रत: निम्नांकित बिन्दुओं को दृष्टि में रखा जाना समीचीन होगा-

(अ) विचार या विषय तत्व- जो एकांकी मेंनिहित संवेदना, उसमें प्रतिष्ठित मूल्यवत्ता और उस मूल्य की चरित्रों में अन्विति को समाविष्ट करके चलता है।

(आ) जीवन का तनाव अथवा द्वन्द्व - जो विचार तत्व द्वारा उत्पन्न होता है।

(इ) कार्य तत्व- जो द्वन्द्व की अभिव्यक्ति कर एकांकी में कुतूहल एवं मनोरंजन एवं मनोरंजन तत्व की संकलन त्रय की सृष्टिकरता है।

१- हिन्दी में एकांकी स्वरूप-भारतीय नाट्य-साहित्य-(सं० डा० नगेन्द्र)पृ०१०४

(ई) अन्य रंग आयाम- जो कार्य तत्व में समीकृत होकर प्रकट होते हैं-यथा-भाषा, सम्वाद, निर्देशक)

<u>ताजमहल के आंसू :</u>

नाटककार लाल के एम० ए० अध्ययन-काल के मध्य रचे गये एकांकियों की संकलन रूप में अभिव्यक्ति का परिणाम है यह संग्रह । इसका प्रथमप्रकाशन सन् १९५० में गर्ग ब्रदर्स, इलाहाबाद द्वारा हुआ था । तब उसमेंपांच एकांकी संग्रहीत थे ।ये थे- `उर्वशी`, `महाकाल का मन्दिर`, `ताजमहल के आंसू`, `जहांनारा का स्वप्न` और नूरजहां की एक रात` । सन् १९५५ मेंप्रकाशित दूसरे संस्करण में दो नये एकांकियों को जोड़ दिया गया जिनके नाम हैं -`सीमान्त का सूरज` और `गांव का ईश्वर` । नाट्य-सृजन और प्रकाशन की दिशा में यह संग्रह एक भूमिका कही जा सकती है और डा० रामकुमार वर्मा जैसे प्रतिष्ठित कलन नाटककार को इसकी भेंट इस दिशा में आगे बढ़ने के लिये अपेक्षित आशीर्वाद ।

उपर्युक्त सभी एकांकियां लाल के सृजन कीमस्ती भरी मानसिक पृष्ठभूमि की ओर संकेत करते हैं । लाल ने इसे `बदनसीब मस्ती`[1] की संज्ञा दी है । इस मानसिक स्थिति के परिणाम इन एकांकियों को लाल दो भागों में विभाजित करते हैं- प्रथम, सामाजिक एकांकी जो `यथार्थ की भाव-भूमि पर गहरी-गहरी चोटें[2] करते हैं, स्पष्ट शब्दों में समाज के कार्य व्यवहारों के औचित्य या अनौचित्य पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं । `गांव का ईश्वर` ऐसा ही एक मात्र एकांकी है । द्वितीय, ऐतिहासिक और पौराणिक एकांकी जिनके विषय में लाल लिखते हैं - `------ आत्मिक-भावुकता की पार्श्वभूमि पर आंसुओं से भीगी हुई अतीत की मौन कहानियां जिनमें एक ओर आनन्द और सन्तोष मिलता है तो दूसरी ओर असीम पीड़ा और यातना ।[3] यही वह दूसरा पक्ष है

१- ताजमहल के आंसू। प्रथम संस्करणकी भूमिका से ।

२- वही- ,,

३- वही- ,,

जो उनके नाट्य-लेखन की प्रारंभिक अवस्था की ओर संकेत करता है, इतिहास और पुराण को अति-भावुकता के धरातल पर रख उसमें रोमांटिक दृष्टि समाविष्ट करता है । `उर्वशी`, `महाकाल कामंदिर`, `ताजमहल के आंसू`, `जहांनारा का स्वप्न`, `नूरजहां की एक रात`, और `सीमान्त का सूरज` ऐसे ही एकांकी हैं । एकांकीकार के अनुसार `इनकी आंखें भरी-भरी हैं, जैसे अभी बरसना चाह रही हैं ।[1]

`उर्वशी` इस संग्रह का प्रथम एकांकी है । उर्वशी नामक अप्सरा के प्रणय निवेदन को अर्जुन द्वारा यह कहकर अस्वीकार कर देने पर कि वह उनकी नृत्य - शिक्षिका होने के साथ-साथ पुरुवंश की आनन्दमयी माता है और इस सम्बंध से उनके लिये भी मातृ-तुल्य आदरणीय है- उर्वशी नारीत्व के अपमान से क्रोधित होकर उसे पौरुषविहीन होकर वृहन्नला नामक नर्तकी के रूप में रहने का श्राप दे देती है । इन्द्र इस श्राप के प्रभाव को एक वर्ष के अज्ञातवास की अवधि तक सीमित कर देते हैं । फलत: वृहन्नला के रूप में अर्जन को राजकुमारी उत्तरा की संगिनी बनकर रहने को अभिशप्त होना पड़ता है । अन्तत: उत्तरा अर्जुन कन के इस छद्म रूप को पहिचान लेती है और उन्हें प्रियतम के रूप में प्राप्त करने की अभिलाषिणी बनती है । वृहन्नला के रूप में अर्जुन ने चूंकि उत्तरा को नृत्य की शिक्षा दी है । अतएव वे उसे अपनी पुत्री के रूप मेंस्वीकार कर लेते हैं ।यह एक प्रकार से अर्जुन द्वारा उर्वशी के प्रति किये गये व्यवहार की पुनरावृत्ति है । इस प्रकार उर्वशी का श्राप अर्जुन के `अज्ञातवास का अमृत-पाथेय` बनजाता है । अर्जुन में निहित यह चरित्र निष्ठा एकांकी को संवेदना के धरातल पर खड़ा करती है और अर्जुन द्वारा उर्वशी और उतरा के प्रति किये गये व्यवहार द्वारा `मूल्य` की प्रतिष्ठा करती है । अर्जुन के ये कथन एकांकी की मूल्यवत्ता को प्रकट करते हैं- `किन्तु देवि ! मैं सत्य कहता हूं-दिशा-विदिशाएं अपने अधिदेवताओं के साथ मेरी बात सुन लें, जैसे कुन्ती, माद्री,शची मेरी माताएं हैं, वैसे ही तुम भी मेरी समस्त शिक्षा-काल में पूजनीय माता तुल्य थीं ।[3]

१- ताजमहल के आंसू। प्रथम संस्करण की भूमिका से

२- वही- द्वितीय संस्करण की भूमिका से ।

३- वही- पृ० १६

+ + +

'बेटी ! घबड़ाओ नहीं । तुम पवित्र हो, मैं तुम्हें कन्यारूप में अपनाता हूं । अभिमन्यु तुम्हारा उचित वर है । पुत्री कल्याण हो'[1]

अर्जुन के प्रति उर्वशी या उत्तरा का प्रणय अर्जुन के चरित्र में पर्याप्त द्वन्द्व का कारण बन सकता था किन्तु उसका दृढ़ निश्चय इस द्वन्द्व को पनपने नहीं देता । ऐसे दैवी चरित्र में द्वन्द्व की अपेक्षा की भी नहीं जा सकती । उर्वशी और अर्जुन के मध्य हुए सम्वादों में कहीं द्वन्द्वात्मक स्थितियां हैं भी तो उनका विकास नहीं हो पाता । द्वन्द्व के अभाव में भी उर्वशी-अर्जुन-सम्वाद में पर्याप्त नाटकीयता है जो उर्वशी के प्रणय-भिखारिणी वाले चरित्र से उत्पन्न हुई है । द्वन्द्व और उसमें निहित कार्य-व्यापार के पर्याप्त विकास के अभाव में सम्वादों के बल पर ही एकांकी की संवेदना को संप्रेषणीय बनाने का प्रयास हुआ है । संवेगात्मक भाषा और रंग निर्देशों में प्रयुक्त अभिनेताओं के भाव-मुद्रा संकेत इस संवेदना को प्रकट करने के कारण तत्व बनते हैं । एकांकी को दो दृश्यों के-कथ्य- में विभाजित कर अर्जुन-उर्वशी और बृहन्नला (अर्जुन)उत्तरा प्रसंगों को प्रस्तुत करने से नाटकीय वस्तु को समझने में सहायता मिलती है । दूसरे दृश्य का अन्तिम सम्वाद दोनों दृश्यों के कथ्य को अन्योन्याश्रित बनाने की दृष्टि से उपयुक्त है -

'उर्वशी! तुम्हारा शाप मेरे अज्ञातवासना का अमृत-पाथेय ! उर्वशी तुम्हारी कुटिल भौं, कांपते हुए ओठों से निकले हुए शाप से मैं अपने को चरित्र निष्ठ रख सका । उर्वशी तुम पवित्र ! उर्वशी ! उर्वशी !'[2]

संग्रह का दूसरा एकांकी है 'महाकाल का मंदिर' । ई० पू० एक सौ पचास के भारतवर्ष की विघटनकारी परिस्थितियों का अंकन कर यह एकांकी भारत के राजनीतिक ,सामाजिक और धार्मिक अवमूल्यन पर अंगुली रखता है । महाकाल के मंदिर का पुजारी युवक ब्रह्मचारी नर्तकी चित्रा को भोग-विलास की सामग्री बनाने का

---------------------५----

१- ताजमहल के आंसू- द्वितीय संस्करणकी भूमिका से-पृ० १६

२- ताजमहल के आंसू- पृ० २५

इच्छुक है । इसीलिये देवमूर्ति के समक्ष नर्तकी का नृत्य देव-पूजा का हेतु न होकर ब्रह्मचारीकी रजोगुणी वृत्ति की तुष्टि का हेतु बन जाता है । शासन का प्रतिनिधि पुण्यमित्र धर्म के नाम पर होनेवाले इस अनाचार को रोकना- रोकना तो चाहता है लेकिन अपनी पशुवृत्ति का शमन नहीं कर पाता । फलत: वह चित्रा को अपनी वासना का शिकार बनाना चाहता है । चित्रा के नारीत्व को इस संकट मयघड़ी से बचाने का कार्य उसका प्रेमी वसुमित्र करता है- वही वसुमित्र जिसने कभी मातृ-पितृ विहीन चित्रा को अपने निश्छल प्रेम का सम्बल प्रदान किया था । ब्रह्मचारी और पुण्यमित्र से चित्रा को बचाने का संकल्प करने के साथ-साथ वसुमित्र ब्रह्मचारी के देशद्रोहपूर्ण षडयंत्र का भण्डाफोड़ कर राष्ट्र की स्वतंत्रता के प्रति अपने कर्तव्य का भी निर्वाह भी करता है । वसुमित्र की इस वीरता के प्रति चित्रा अनुरक्त हो उसके रक्त से अपनी मांग भर लेती है । एकांकी में चित्रा और वसुमित्र का प्रणय-सम्बंध संवेदना के धरातल को पुष्ट करता है । इस संवेदना की घनीभूत अभिव्यक्ति तब होती है जब रक्त रंजित मूर्च्छित प्राय: वसुमित्र के रक्त से चित्रा अपनी मांग भरती है और यह भावपूर्ण कथन कहती है - 'वसु ! वसु !! अपनी अंगुली के बहते हुए इस पवित्र रक्त से मेरी मांग भर दो ! मुझे पवित्र कर लो, वसु ! मेरे वसु !!'[१] वसुमित्र के प्रति चित्रा की यह घनी संवेदना वसुमित्र के प्रेम और कर्तव्य के मूल्यों में समन्वय स्थापित करने के परिणाम स्वरूप होती है । तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में वसुमित्र द्वारा ब्रह्मचारी और पुण्यमित्र जैसी धार्मिक और राजनीतिक ताकतों को चुनौती देने से जो संघर्ष उत्पन्न होता है वह आन्तरिक न होकर बाह्य ही अधिक है । सम्वादों में यह बाह्य-संघर्ष अनेक कोणों से लक्ष्य किया जा सकता है- ब्रह्मचारी और पुण्यमित्र के मध्य, वसुमित्र और ब्रह्मचारी के मध्य, वसुमित्र और पुण्यमित्र के मध्य, चित्रा और पुण्यमित्र के मध्य और चित्रा और ब्रह्मचारी के मध्य । बहिर्द्वन्द्व के कारण एकांकी में कार्य(Action) की अपेक्षा

१- ताजमहल के आंसू- पृ० ५०

उस द्वन्द्व का निर्वाह करने वाली- भाषा महत्वपूर्ण हो जाती है । वसुमित्र के इस कथन में नाटकीय कार्य को दृश्य रूप से न दिखाकर उसके स्थान पर सूच्य-भाषा का प्रयोग किया गया है- 'नहीं चित्रे ! ब्रह्मचारी से मुझसे घोर लड़ाई हुई और मैंने उसे मारा, परन्तु जिस समय वह चोट खाकर मर रहा था, पीछे से किसी छिपे हुए शत्रु ने मुझ पर वार किया ।'[१] भाषा और उसमें निहित अति-भावुकता एकांकी को रचनात्मक धरातल पर 'काव्य भाषा' से सम्पृक्त बना देती है ।

संग्रह का तीसरा एकांकी 'ताजमहल के आंसू' ऐतिहासिक चरित्रों को कवि की भावुकता और नाटककार की नाटकीयता के दर्पण में देखने का प्रयास है । एकांकी में चरित्रों द्वारा वस्तु तत्व को ऐतिहासिक से भावुक और करुणाप्रधान मोड़ देने की प्रक्रिया एकांकीकार के मौलिक दृष्टि का परिचायक है । आगरे के किले में अपने ही पुत्र औरंगजेब द्वारा बन्दी बनाये शाहजहां का अन्तर्द्वन्द्व इस एकांकी का आधार है। शाही कैदखाने की बीतती रात्रि में शाहजहां सामने के विस्तीर्ण अन्धकार में चमकते ताजमहल को देखता है और उसे ऐसा प्रतीत होता है मानों उसकी बेगम मुमताजमहल मकबरे की ओर भागी जा रही है । वह मुमताज को रोकना चाहता है क्योंकि उसे मुमताज से एक विशेषसलाह लेनी है । वह औरंगजेब का खून करना चाहता है और इसी सम्बंध में मर्म- मां के हृदय को जैसे टटोलना चाहता है । स्वप्नाविष्ट अवस्था में कभी उसे मुमताज का मुस्कराता चेहरा दिखायी देता है तो कभी वह उसके पैरों से लिपटकर उसे औरंगजेब की हत्या करने से रोकती है । मातृत्व की यह कोमलता ही बार-बार शाहजहां को औरंगजेब के प्रति पिता की दृष्टि से विचार करने को प्रेरित करती है । औरंगजेब के प्रति शाहजहां में ममता और कठोरता का यह अन्तर्द्वन्द्व बार-बार अपनी मृत बेगम मुमताज की साक्षी प्राप्त करना चाहता है । अन्ततः वह औरंगजेब को कत्ल कर देने का निश्चय कर लेता है- अपने प्रिय पुत्र दाराशिकोह की औरंगजेब द्वारा कर दी गयी हत्या का समाचार पाकर दुःख और क्षोभ में जलते शाहजहां का

१- ताजमहल के आंसू- पृ० ४८

उपर्युक्त निर्णय और भी दृढ़ हो जाता है । वह औरंगजेब को गले लगने के बहाने उसकी छाती में कटार भोंक देने के षडयंत्र की योजना बनाता है लेकिन जब इसे क्रियान्वित करने का क्षण आता है तो एक बार पुन: अपने ही पुत्र की हत्या करने के निर्णय की साक्षी हेतु वह ताजमहल की ओर देखता है । उसे लगता है जैसे स्मन ताजमहल के आंसू बहा रहा है, औरंगजेब की अम्मी रो रही है- ताजमहल के आंसू मानों मां की ममता की पुकार हैं जो अपने बेटे की आसन्न मृत्यु पर बहाये जा रहे हैं । शाहजहां का अटल निर्णय भी जैसे डगमगा जाता है और उसकी आस्तीन में छिपी कटार भी छूटकर गिर पड़ती है । एकांकी का यह वह केन्द्र है जहां मातृत्व के आगे पिता का कठोर हृदय की पराजय को लक्ष्य कियाजासकता है । शाहजहां के इस कठोर निर्णय के अन्तर्हित मानवीय मूल्य बोध है अवश्य जो आवेश में विस्मृत कर दिया जाता है ।मुमताज की स्मृति उसके इसी मूल्य को उभारती है । इस मानवीय मूल्य को दृढ़ करने की म ही प्रक्रिया का परिणाम है 'ताजमहल के आंसू ' और इस प्रक्रिया में शाहजहां का ममता और प्रतिशोध के मध्य द्वन्द्व एकांकी को अभिनय की गतिशीलता प्रदान करता है । जहांनारा और जौहरत के चरित्र शाहजहां के द्वन्द्व ~~एकांकी को अभिनय की गतिशीलता प्रदान करता है । जहांनारा~~ को अभिव्यक्तिदेनेवाले चरित्र हैं और औरंगजेब के बेटे सुल्तान द्वारा जौहरत ~~के चरित्र शाहजहां~~ से निकाह करने का प्रस्ताव व दारा ह की हत्या का प्रसंग उसके द्वन्द्व में आहुति डालने वाले कार्य तत्व हैं । रात्रि का अंतिम पहर, खिड़की में से दिखता ताजमहल और यमुना, किले के आखिरी गजर की आवाज आदि शाहजहां के अन्तर्द्वन्द्व को सघन बनानेवाले विशिष्ट निर्देश हैं । शाह जहां के स्वप्न को उसी के द्वाराइस प्रकार अभिव्यक्ति देना भाषा की चित्रात्मकता की ओर संकेत करता है- 'नहीं बेटी, कैसी पागल है तू ? अपनी अम्मी को नहीं देख पा रही है । देख मेरी आंखों से देख बेटी । वह देख ताजमहल के पास पहुंच रही है ,कितनी तेजी से भाग रही है । देख, उसकी आसमानी ओढ़नी में सफेद सल्मे-सितारे चमक रहे हैं , पन्नों की कमर-पेटी में मेरा सुर्ख रंग का पोखराज चमक रहा है । वह देख भागती जा रही है । उसके सर के स्याह गेसू हवा में उड़ रहे हैं ।(चीखकर पीड़ा से) बेटी । कैद कर ले इस जाती हुई रात को ।'[१] इस एकांकी में भाषा की काव्यात्मकता

१- ताजमहल के आंसू- पृ० ५७

अन्तर्द्वन्द्व और उससे सम्पोषित कुतूहलमय कार्य व्यापार द्वारा वलयित होने से पर्याप्त नाटकीय है। इसे नाटकीय बनाने में शाहजहाँ के भावावेश में निकले कतिपय वाक्य या वाक्यांश पर्याप्त प्रभावी रहे हैं - 'लेकिन मेरी मुमताज कहाँ छिप गयी ? कहाँ है तू ? (नीचे खड़ा हो जाता है) अरे ! कहाँ छिप गयी तू ? (खिड़की से बाहर देखकर) आह ! खौफनाक सुबह।

+ + +

' बेटी। औरंगजेब की अम्मी रो रही है। मुमताज। मेरा ताजमहल रो रहा है बेटी। बेटी।

संकलन का चौथा एकांकी 'जहाँनारा का स्वप्न' औरंगजेब की कैद में तड़पती शाहजहाँ की पुत्री जहाँनारा के जीवन के एक ऐसे प्रसंग को समक्ष रखता है जो ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा अनछुआ है। राव राजा से जहाँनारा का प्रेम प्रसंग मुगल इतिहास में हिन्दू- मुस्लिम सौहार्द की एक महत्वपूर्ण घटना है। एकांकी~~करण~~ कार ने इसे नाटकीय अर्थवत्ता प्रदान की है। अपनी कैद में एकाकी जहाँनारा के जीवित रहने का एकमात्र सहारा उसके प्रेमी रावराजा की स्मृति ही है। यह उसके हृदय में स्पन्दन का कारण बनती है। एकांकी के प्रारंभ में जहाँनारा की इस एकाकी मन:स्थिति को मनोवैज्ञानिक धरातल से उभार कर शनै:शनै: उसकी दासी आशना के माध्यम से उसका रावराजा के प्रति प्रेम का उद्घाटन किया गया है। इसके लिए आशना द्वारा गढ़ी वायी कथा नाटकीय कुतूहल को जन्म देती है। यह परस्पर प्रेम एकांकी में निहित उस भव्य ईहा को प्रकट करने का भी माध्यम बनता है जो हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव के विवेचन के रूप में इस एकांकी में लक्ष्य की जा सकती है। जहाँनारा द्वारा रावराजा के इस कथन का उद्धरण इस सद्भाव की ~~कुंजि है~~ कुंजी है - 'मुगल और राजपूत एक, मुसलमान और हिन्दू दो नहीं एक, दोनों एक भारत के दो भाई- अपना एक वतन।'[1] युगल प्रेमियों के प्रेम की उत्कटता तब प्रकट होती है जब औरंगजेब

1- ताजमहल के आँसू- पृ0 87

के कड़े अवरोध के उपरांत वे मिलते हैं। मिलन के ये क्षण एकांकी की आत्मा हैं और अभिनय की संपूर्ण ऊष्मा समाविष्ट किये हैं। एकांकी का अन्त जहाँनारा के भावावेश में मूर्च्छित हो जाने और उसी मूर्च्छा में चम्बल की लड़ाई में रावराजा की मौत के स्वप्न देखकर जाग पड़ने के रूप में होता है। टूटते सितारे रावराजा की मौत को जैसे प्रमाणित कर देते हैं। शिल्प की दृष्टि से रावराजा की मृत्यु के प्रसंग का वर्णन विशिष्ट है। वह मंच पर प्रत्यक्ष न दिखायी जाकर जहाँनारा के स्वप्न द्वारा दिखायी गयी है। तारा टूटने का संकेत वातावरण की भयावहता को अधिक गहरा देता है। एकांकी का यह अंश मार्मिक होने के साथ-साथ नाटकीय गति लिये हुए है।

संकलन का पाँचवा एकांकी 'नूरजहाँ की एक रात' जहाँगीर के हरम में रहती नूरजहाँ के अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट करने वाला एकांकी है। नूरजहाँ का यह सन्देह कि उसके पति शेर अफगन की हत्या जहाँगीर के षड्यंत्रों से हुई है, उसमें जहाँगीर के प्रति घृणा और विद्रोह को जन्म देता है। दूसरी ओर जहाँगीर नूरजहाँ को सच्चा प्रेम करता है लेकिन नूरजहाँ का सन्देह किसी भाँति दूर नहीं कर पाता। नूरजहाँ का कौमार्यावस्था में ही जहाँगीर के प्रति अनुरक्त होना उसके जीवन एक और सत्य है जो उसकी वर्तमान घृणा और विद्रोह पर बार-बार हावी होता है। नूरजहाँ अपने अन्दर के इस पत्नीत्व और प्रेमिका के अन्तर्द्वन्द्व से गुजरकर अन्तत: जहाँगीर के प्रेम को स्वीकार कर लेती है। यहीं यह रहस्योद्घाटन भी होता है कि लैला जो नूरजहाँ की बेटी है, शेर अफगन के नहीं बल्कि जहाँगीर के पवित्र प्रेम की निशानी है। युगल प्रेमियों के परस्पर बंधने की शुभ घड़ियों में जहाँगीर शराब को हाथ न लगाने का प्रण करता है और प्यार और मोहब्बत की सल्तनत की स्थापना करता है। कार्य व्यापार के विकास की दृष्टि से नूरजहाँ के घृणा और प्रेम के बीच अन्तर्द्वन्द्व में सातत्य देखने को नहीं मिलता क्योंकि जहाँगीर की बार-बार उपस्थिति उस सातत्य को तोड़ती है। इसी प्रकार लैला का जहाँगीर की बेटी होने का सत्य भी किसी पूर्वापर प्रसंग के बिना थोपा

गया लगता है। प्रेम और मोहब्बत की रिआया में गरीबों के लिये शाही खजाने को खोल दिये जाने और शराब की सुराहियाँ फोड दिये जाने सम्बंधी प्रसंग एकांकी में अति नाटकीयता वाले प्रसंग हैं। कालेज या स्कूली मंचों पर खेले जाने वाले नाटकों में ऐसे प्रसंगों का समावेश स्वाभाविक है।

संकलन का छठा एकांकी 'सीमान्त का सूरज' धर्मराज युधिष्ठिर के सदेह स्वर्गारोहण के पौराणिक आख्यान से सम्बंधित है। भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी मृत्यु के समक्ष अवश हो जाते हैं और मृत्यु उन पर विजय प्राप्त कर लेती है। ये महाभट अपनी अतुल शक्ति से इस मृत्यु का सामना करने में अक्षम रहते हैं। बच रहते हैं युधिष्ठिर जो स्वजनों से अलग होकर दुःख की ज्वाला में जल रहे हैं। वे इस दुःख का कारण अपने सत्य-बल का टूट जाना मानते हैं- 'मेरे भी पास सत्य कहने का अभिमान था लेकिन मैंने स्वयं तोड़ दिया उसे- 'अश्वत्थामा हतो' मैं शून्य हूं मैं तभी मैं सदा भटकूंगा। आह। मेरे पास भी कोई अभिमान था। कुछ भी होता मेरे पास----।'[1] युधिष्ठिर की अपने पाप-पुण्य के सम्बंध में आत्मालोचन ही वह शक्ति है जिसके कारण स्वयं इन्द्र उन्हें सदेह स्वर्ग ले चलने को आये हैं। युधिष्ठिर का धर्मनिष्ठ चरित्र तब और उदात्त हो उठता है जब वे इस शर्त पर स्वर्ग जाने को तैयार होते हैं कि उनके दुर्गम पथ का सहभोक्ता श्वान भी उनके साथ आयेगा। युधिष्ठिर के इस चरित्र पर मुग्ध होकर श्वान के रूप में प्रच्छन्न स्वयं धर्म प्रकट हो उठते हैं। यहाँ युधिष्ठिर का यह कथन उनके निस्पृह व्यक्तित्व को प्रकट करने का कार्य करता है-'धर्मपद, धर्मराज की स्थिति में तुम दोनों ने स्नेह के नाम पर मेरी निर्मम परीक्षा ली है। विश्वासघाती। मैं नहीं जाउंगा तुम्हारे स्वर्ग। ले जाओ अपना विमान! छली, कपटी!! मैं ऐसे धर्मराज पद को-----।[2] यहाँ युधिष्ठिर का स्वाभिमान फिर सामने आता है। धर्म पालन के साथ-साथ स्वाभिमान बनकर

1- ताजमहल के आंसू- पृ0 131

2- वही- पृ0 136

चमक उठता है। एकांकी में पौराणिक चरित्र को दैवी रूप में प्रतिष्ठित न करके मनुष्य की सद्-वृत्तियों के प्रकाश में देखा गया है। फलस्वरूप वह सम्प्रेषणीय है। पौराणिक सत्य को उसके मूल रूप में वही रहने देकर उसमें मानवीय गुणों के औदात्य की प्रतिष्ठा इस एकांकी की ~~शक्ति~~ शक्ति है।

संकलन का सातवां एकांकी 'गांव का ईश्वर' दो पीढ़ियों के द्वन्द्व को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाला एकांकी है और स्वतंत्रता के पश्चात भारत में सामाजिक संक्रमण की प्रकृति का चित्रण करता है। इस एकांकी का केन्द्र बिन्दु है शिवपाल जो हमारी परम्परावादी पुरातन पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। उसे हर नयी विचार-धारा से पूर्वाग्रह है और अपनी कही गयी बात को मनवाने का दुराग्रह। पुत्र-पिता के कहे मार्ग पर न चले- यह उसे असह्य है। इसीलिये वह अपने पढ़े-लिखे और शहर में नौकरीरत पुत्र रतन से बैर करता है। रतन नयी रोशनी का युवक है। उसके विचारों के अनुसार परंपराओं को समय के साथ अपना स्वरूप परिवर्तन करना चाहिये। इसी कारण वह अपनी बहिन केशर के विवाह के विरोध में आवाज उठाता है। केशर अभी केवल तेरह वर्ष की है और पिता ने उसका विवाह धन के लालच में एक अधेड़ के साथ तय किया है। रतन के विरोध के उपरांत यह विवाह हो रहा है। पिता शिवपाल रतन से द्वेष रखने के उपरांत मन ही मन इस विवाह में उसकी सहायता की अपेक्षा अवश्य रखता है। रतन विवाह में सहायता अवश्य करता है किन्तु केशर को इस इस बेमेल विवाह को अस्वीकार करने और वहां से भाग चलने को प्रेरित भी करता है। लेकिन हमारे यहां की नारियां अभी समाज से सीधे टक्कर लेने की स्थिति में नहीं हैं। केशर में वही भारतीय नारी प्रतिबिंबित हो उठी है। अपने विरोध की असफलता से पीडित रतन विवाह में सम्मिलित हुए बिना शहर चला जाता है। एकांकी के अन्त में पारस्परिक सम्बंधों की कटुता तब और भी मुखर हो उठती है जब रतन के शहर लौट जाने की बात सुनकर शिवपाल कह उठता है- 'जाने दो बेईमान को जाय-चला गया तो क्या हुआ? ईश्वर मालिक है। शादी उसके बिना थोड़े ही रुकेगी। इन

शब्दों में शिवपाल के अन्दर का स्वार्थी और रूढ़िवादी चरित्र प्रकट होता है जो अपनी व्यापकता में सम्पूर्ण गांव का चरित्र है और जो आज भी गांव का ईश्वर बना हुआ है। एकांकी में पीढ़ियों का द्वन्द्व अन्ततः एक करुण यथार्थ समक्ष रखता है। यह यथार्थ स्वातंत्र्योत्तर भारतीय और विशेषकर ग्रामीण समाज का एक सम्पूर्ण चित्र सामने लानेवाला है। प्रस्तुत संकलन में एकमात्र यही एकांकी है जो सामाजिक जीवन के यथार्थ को बिना किसी शाश्वत समाधान के प्रस्तुत करती है। एकांकी में ग्रामीण परिवेश को उसके वातावरण के चित्रण द्वारा उभारने का प्रयत्न किया गया है किन्तु संवेदनाओं द्वन्द्व के चित्रण के समक्ष यह चित्रण प्रभावी नहीं बन पाता।

नाटक बहुरंगी :

लाल के एकांकी-रचना की यात्रा में आगामी संग्रह 'नाटक बहुरंगी' सन् 1960 में प्रकाशित हुआ था किन्तु इसमें संगृहीत एकांकी पांचवें दशक में रचे जाते रहे थे और विशेषकर अव्यावसायिक नाट्यमंडलियों और विश्वविद्यालयी मंच पर खेले जाते रहे थे। इस संग्रह का प्रथम एकांकी 'मम्मी ठकुराइन' विशुद्ध सामाजिक विषय को लेकर रचा गया है। पारस्परिक सौहार्द्र, पड़ोसी धर्म जैसे सामान्य विषय को विरोध, पारस्परिक वैमनस्य जैसे नितान्त उल्टे प्रसंगों के मध्य विकसित होते दिखाकर नाटकीय द्वन्द्व की सृष्टि की गयी है। मम्मी और ठकुराइन आमने-सामने के घरों में रहनेवाली पड़ोसिनें हैं। मम्मी के पति प्रोफेसर हैं जिनका तबादला जयपुर से इस शहर में हो गया है। ठकुराइन के पति टिकट बाबू हैं। मम्मी को शिकायत है कि इस गन्दे मोहल्ले में आकर उनके बच्चों- नीता, अजय की आदतें बिगड़ गयी हैं और इसकी जिम्मेदारी पड़ोस की है, ठकुराइन के उद्दण्ड लड़के बहादुर की है। सच यह है कि बहादुर सेर है तो नीता व अजय सवा सेर। जो भी हो, मम्मी की अपने सम्बंधी सभी आलोचनाओं के उपरांत ठकुराइन अपनी सहनशील प्रकृति के कारण और अपनी मानवीय वृत्ति के कारण उस संकट के समय मम्मी की सहायता करती हैं जब मम्मी की बहिन एक कठिन प्रसव के मध्य गुजरती हैं। दूसरी ओर मम्मी और उनके पति प्रोफेसर सा0 नवजात बच्चे के मर जाने का सारा दोषारोपण ठकुराइन पर करते हैं।

मम्मी का कहना है कि ठकुराइन ने बच्चे पर जादू कर दिया तभी वह चटपट मर गया और मास्टर साहब-प्रोफेसर सतसंगी का कहना है कि ठकुराइन ने गन्दे हाथों से बच्चे को छुआ था, उसे सेप्टिक या टिटेनस हो गया ।[1] टिकट बाबू अपनी पत्नी पर लो लांछन को सहन नहीं कर पाते और वे मोहल्ला छोड़ देने का संकल्प कर लेते हैं। अब संघर्ष दोनों घर की स्त्रियों के मध्य न रहकर पुरुषों के बीच हो जाता है और दोनों ही स्त्रियां परस्पर टूटते पड़ोस सम्बंधों की वेदना लेकर खड़ी रह जाती हैं। संघर्ष से प्रारंभ होकर कार्य-व्यापार मानवीय संवेदना के धरातल पर आकर स्थिर हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपरान्त अनेक मानवीय बुराइयों के स्नेह और सौहार्द का जो जीवन मूल्य है उसकी वाहक पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक हैं। परस्पर वैमनस्य स्त्रियों के लिये पानी के बुलबुले के समान क्षणिक है जबकि वही पुरुषों की प्रतिष्ठा और सम्मान का एक स्थायी और ग्रन्थि उत्पन्न करने वाला प्रश्न बन जाता है। एकांकी में निहित इस विचार तत्व को बच्चों के परस्पर झगड़ों, उनकी प्रतिक्रियाओं उनके अभिभावकों और इस प्रतिक्रिया के मध्य मानवता-बोध के प्रसंगों द्वारा उभारा गया है। इस नाटकीय कार्य को रंग-अनुभूति का हेतु बनाने के लिये प्रारंभ में चरित्रों के परिचयात्मक नाट्य-निर्देशों के प्रयोग एकांकी में सूत्रधार की भूमिका जोड़ने के लिये एक प्रयोग की दिशा है। तूफान और आंधी के वातावरण और गली की चहल-पहल के निर्माण में एकांकीकार का लक्ष्य यथार्थवादी मंच की संभावनाओं को मुखर करना रहा है। एकांकी की भाषा सार्थक नाट्य-शब्दों से रंग-बोध जाग्रत करने में सक्षम रही है। 'तू कहीं का लाट साहब है क्या', 'भ भकाभक गिरते हैं और ऊपर से पें पें पें', 'अरे जाजा। बड़ी तमीजदार आयी है। नयी नाइन, बाँस का नाहना', 'बड़े तहजीबदार बनके आये हैं', 'अभी इस जेलखाने में बन्द करने से जी नहीं भरा क्या ? हाय, मेरी किस्मत फूट गयी।' 'जि जनमे हैं कुंवर कन्हैया ---' आदि नाट्यानुभूति उत्पन्न करनेवाले प्रसंग हैं। समग्रत: एकांकी लोक-प्रवृत्ति, उसकी मनोवृत्ति और मूल्यों को नाट्य-सन्दर्भों के मध्य उभारने का सफल प्रयास है।

1- मम्मी ठकुराइन- पृ0 40

संग्रह के दूसरे एकांकी `दो मन चांदनी` में उत्पल एक पार्क में बैठे चन्द्रमा की दो मन चांदनी का पान कर रहे हैं क्योंकि अन्तत: यही चांदनी तो ज्योत्सना नाम से उनकी प्रेयसि है। दूसरी ओर घर पर ज्योत्स्ना और उसके पिता उत्पल के लिये सगाई की रस्म पूरी करने आये हुए हैं। मित्र रूपघन द्वारा उत्पल को बार-बार घर चलने के आग्रह के उपरान्त उत्पल दो मन चांदनी के `कोटे` को पी लेने का संकल्प किये बैठे हैं।- एक मन स्वयं के लिये और एक मन ज्योत्स्ना के लिये। उन्होंने तो अपने अतीन्द्रिय जगत में ज्योत्स्ना को दुल्हन के वेश तक में प्राप्त कर लिया है, सगाई की अंगूठी का आदान-प्रदान तक किया जा चुका है। उत्पल का मोह भंग तब होता है जब उसका मित्र रूपघन आकर समाचार देता है कि ज्योत्स्ना के पिता मालिक दादा ने उनका रिश्ता अस्वीकार कर दिया है क्योंकि उनके अनुसार उत्पल का `माथा खराब` हो गया है, वह पागल हो गया है। इस एकांकी विवाह और प्रेम जैसे सामाजिक विषय को हास्य-व्यंग्य के माध्यम से उठाया गया है। प्रेम का धरातल अयथार्थ है जबकि विवाह एक यथार्थ सामाजिक व्यवहार है। उत्पल अपने अयथार्थ और `आदर्श प्रेम` के पीछे, निसर्ग की ज्योत्स्ना के पीछे- धरती की जीती जागती, ज्योत्स्ना से भी हाथ धो बैठते हैं। एकांकी में न तो संवेदना की गहराई है और न ही किसी प्रकार का द्वन्द्वात्मक विकास। एकांकी के अन्त में रिश्ता टूट जाने की बात सुनकर भी उत्पल का गीत गा उठना नाट्यानुभूति और भी हल्का-फुल्का कर छोड़ बैठती है। इस एकांकी का कार्य तब शिथिल है किन्तु वस्तु तत्व की ऐसी ही अपेक्षा होने के कारण वह एकांकी शिल्प की कमजोरी नहीं कही जा सकती। कार्य को स्थान एवं समय के साथ जोड़कर `त्रय` का निर्वाह यहां हुआ है। पार्क के अनुरूप यथार्थ मंच सज्जा के दो उपादान यहां उपस्थित हैं वे `नातिदीर्घ` होने से उपयुक्त हैं। पार्क में बैठे दो आदमी उत्पल के चरित्रांकन हेतु सर्जित किये गये हैं। बाबू जी और सरोज- दम्पति का सर्जन एकांकी के विषय प्रेम और विवाह के मध्य तुलनीय दृष्टि उत्पन्न करने हेतु किया गया है। एकांकी किसी सार्थक नाट्यानुभूति की ऊष्मा उत्पन्न नहीं कर पाती- हास्य-व्यंग्य स्वांगधारी लोकरंग और मनोरंजन के तत्वों का भी केवल स्पर्श ही कर पायी है।

'सुबह से पहले' मनोविज्ञान के धरातल पर सामाजिक विषय को स्पर्श करने वाली एकांकी है। प्रेमिका और पत्नी का द्वन्द्व हिन्दी नाटकों के लिये नया विषय नहीं है लेकिन उस द्वन्द्वात्मक स्थिति में जब पुरुष का निर्दय और पूर्वाग्रही अमानवीय पक्ष नारी पर हावी हो जाता है तो यह द्वन्द्व और भी गहरा जाता है। डा०हरिनाथ, अनुपम और इन्दर- त्रिकोण चरित्र हैं जिनके द्वारा आन्तरिक तनाव की सृष्टि की गयी है। संयोगवश एक यात्रा के मध्य एक जंक्शन के सेकेण्ड क्लास वेटिंग रूम में डा0 हरिनाथ की अनुपम पत्नी अनुपम को अपना पूर्व प्रेमी इन्दर मिल जाता है जो बीमार है और अभावों से ग्रस्त है। एक डाक्टर होने के नाते हरिनाथ इन्दर की सेवा सुश्रुषा के लिये तैयार हो जाते हैं - उसके लिये इन्जेक्शन का प्रबंध करते हैं और 'डाक्टर के कर्तव्य' के अनुसार इस असहाय अवस्था में मरीज को अपने घर तक ले जाने का निर्णय ले लेते हैं। अनुपम अपने पति की इस मानवता और सदाशयता देखकर कृतज्ञ हो उठती है। इन्दर अतीत के सम्बंधों को निर्ममता से विस्मृत करना चाहता है, 'दुर्भाग्यवश' मिले इस संयोग को अनुपम और उसके पति की दया से ऋणयुक्त नहीं करना चाहता लेकिन अनुपम इस अतीत को अब पकड़कर रखना चाहती है- अब तो उसके पति का साथ भी उसे मिल चुका है। लेकिन उसका यह भ्रम तब टूटता है जब यह मालूम होने पर कि मरीज और अनुपम पूर्व परिचित हैं, डा0हरिनाथ का पुरुषगत अहं संयोग से मिले उन प्रेमियों को अवसर न देकर अनुपम को बलात खींचकर इन्दर को सोता छोड़कर 'लोकल' के स्थान पर पूर्व आयी ट्रेन से निकल जाता है। पति के हाथों बिकी अनुपम पति के इस विश्वासघात को देखकर आश्चर्य, दु:ख और क्षोभ से भर उठती है। इस चरम बिन्दु पर ही एकांकी समाप्त हो जाती है। यहाँ अनुपम के माध्यम से मानवीय संवेदना को उभारने में एकांकीकार को सफलता मिली है। इसी संवेदना के धरातल पर एक ओर अनुपम में निहित मानव मूल्यों से हमारा परिचय होता है और दूसरी ओर डा0 हरिनाथ की मूल्यविहीनता और स्वार्थपरता के भी दर्शन होते हैं। अनुपम के मन में चलने वाला द्वन्द्व केवल पत्नी और प्रेमिका के द्वन्द्व तक नहीं रह जाता प्रत्युत उस द्वन्द्व के कारण उसके मानस में आशा

के तन्तुओं के अकस्मात टूट जाने की पीडा घर कर जाती है। अनुपम का यह कथन एकांकी के वातावरण में एक तनावपूर्ण परिस्थिति के जन्म का कारण बनता है - (रुँधे कण्ठ से) आपको ऐसा ही करना था तो इसे घर ले जाने के लिये क्यों कहा ? (रो पड़ती है) अपने धर्म निभाने की सभ्यता क्यों प्रकट की ?[1] अनुपम की भावनाएं पंख फड़फड़ा कर सुबह होने का अनुभव करें, इससे पूर्व ही डा0 हरिनाथ उनके पंख काटकर रख देते हैं। द्वन्द्व और मानसिक उद्वेलन को क्षिप्रता से बदलने वाले क्रिया व्यापार के कारण सार्थक नाट्यानुभूति प्राप्त होती है- बीमार यात्री को ताकते हुए अचानक अनुपम का बेचैन हो उठना, डाक्टर से मरीज को इन्जेक्शन लगाने का प्रस्ताव रखना, डाक्टर द्वारा सहमत होने पर प्रसन्न हो उठना, 'पिम्मी' और इन्दर का सम्वाद, इन्दर द्वारा दया की भीख का विरोध करने पर अनुपम का कण्ठ अवरुद्ध हो उठना, डाक्टर के करुणापूर्ण चरित्र पर आत्म-विश्वास प्रकट करना और इस आत्म विश्वास का नाटकीय विडम्बना के रूप में तब बदल जाना जब डाक्टर अनुपम को इन्दर से दूर कर देता है।- आदि ऐसे ही क्रिया व्यापार हैं। अन्तत: एक बार वेटिंग रूम से अनुपम और सामान के साथ चले जाने के उपरान्त फिर लौटकर इन्दर पर ओढ़ाये गये शाल को उठा ले जाना डाक्टर की मूल्यविहीनता की ओर एक तीक्ष्ण मार है। एकांकी का सम्पूर्ण कार्य-व्यापार एक ही दृश्य बन्ध पर है जो बाक्स-मंच की सीमा की एक मुक्त चुनौती है। और नाट्य-शिल्प की दृष्टि से यथार्थ शिल्प की ओर संकेत करता है। रचना के धरातल पर यह एकांकी मानवीय मूल्यों पर एक बेबाक दृष्टि देनेवाली एकांकी है।

'औलादी का बेटा' सामाजिक एकांकी है और निम्न मध्यवर्गीय समाज के अस्तित्व के प्रश्न को उठाने वाली है। इसमें निर्धनता के मध्य सम्मान, असम्मान के बोध का चित्रण हुआ है। लोक- मनोवृत्ति से संचालित होने के कारण इस एकांकी

1- सुबह से पहले- पृ0 82

के स्वर में लोक-जीवन की संवेदनानाओं का भी चित्रण देखने को मिलता है। दसिया के घर पर मेहमान आये हुए हैं जिनके यहाँ उसे अपने बेटे मीखी और बेटी हिरिया के लिये अदले-बदले में रिश्ता करना है। मेहमान के सामने वह न तो अपने घर की निर्धनता का प्रदर्शन करना चाहती है और न ही अपने मान का दलन। इसी कारण हिरिया को भेजकर वह किसी तरह आटे का प्रबंध करती है और दूसरी ओर बहुत दिन चढ़ आने पर भी सड़क की सफाई न कर पाने के कारण सिर पर खड़े क्रूर जमादार से भी अनुनय विनय करती है कि वह धीरे बोलें क्योंकि मेहमान आये हुए हैं। दसिया के बेटे मीखी को इस बात का क्षोभ है कि मेहमानों के रहते उसकी उपेक्षा हो रही है। इसीलिये वह काम पर भी नहीं जाता। लेकिन उधार माँगकर लाये कपड़ों से मेहमानों पर रौब जमाने के लिये वह तत्पर है। दूसरी ओर, अपने सम्पूर्ण दोषों के उपरांत जमादार के मुँह से अपने बाप-दादाओं को गाली खाते वह सहन नहीं कर सकता और बदले में जमादार की मार खाकर भी उसे गाली देकर प्रतिशोध ले ही लेता है। दसिया के लिये मीखी का यह कार्य ही जैसे उसके सभी दुर्गुणों पर पर्दा डाल देता है। इस एकांकी में शोषण के विरुद्ध प्रतिकार का मूल्य देखने को मिलता है। वंश-कुल के वर्चस्व का बोध निम्न मध्यवर्गीय समाज में भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना ऊँचे वर्ग में। मीखी में वही बोध है और यह इस समाज में क्रमश: चेतना के विकास का प्रतीक है। दसिया परंपराओं से जकड़ी है - फलत: जमादार की गालियाँ सुनकर भी इसलिये चुप रहती है कि मेहमान पर उसकी इज्जत का गलत प्रभाव पड़ेगा (यद्यपि मेहमान भी ऐसी ही परिस्थिति में रहने के अभ्यस्त हैं) दसिया निम्न मध्य वर्ग की असहायता और शोषित मानसिकता का प्रतीक है जबकि मीखी में चेतना का एक क्रमश: उठता हुआ मूल्य देखने को मिलता है। जमादार इन दोनों के मध्य है और नाटकीय द्वन्द्व का हेतु बनता है। यह द्वन्द्व एकांकी के चरम बिन्दु पर प्रकट हुआ है - मीखी- जमादार ने मारा है माँ। वह सुबह तुझे गाली दे रहा था न। सड़क और नाली पर खड़ा होकर भी हम सबको गाली दे रहा था। मेरे दादा और बाप का नाम ले लेकर गाली दे रहा था। मैंने भी उसे गाली दी। इतनी

गालियाँ कि चुप कर दिया उसे। वही अभी आया था।[1] उक्त द्वन्द्व और उसमें निहित कार्य तत्व का वहन करने में एकांकी की भाषा की भूमिका अहम् है- 'पानी नहीं, आग डाल दे आग। जगाने चली है। रात क्यों नहीं जगाया जब खाना तैयार हुआ था। सब गटर-गटर खा लिया न। अकेला मैं ही था उपवास करने के लिये। 'हां हां। गरम पानी के संग थोड़ा नमक और छुरी भी लेती आना, नाश्ता कर लेना तुम लोग।, भाग गया। निकल गया बुड्ढा पढ़ा के। आना लौटकर। आज परस दूंगी थाली में। खा लेना गटर-गटर। एकांकी को वर्ण्य संवेदना के स्तर पर उजागर करने के लिये दृश्य योजना उपयुक्त है। टिन, घासफूस और खपरैल से ढंका छोटा सा घर, कच्चा और गन्दा आंगन, टूटा हुआ पिछवाड़े का हिस्सा, बुढ़िया खाट ऐसे उपादान हैं जो निम्न मध्यवर्ग की अवस्था को सामने ला खड़ा करते हैं। एकांकी यथार्थवादी मंच की ओर संकेत करता है।

'बाहर का आदमी' के लिये एकांकीकार किसी विशेष रंग 'का नाम नहीं दे पाया है।[2] क वैसे यह एकांकी समाज में व्यक्ति की स्थिति और उस कारण उत्पन्न वैयक्तिक पीड़ाओं को स्वर देनेवाली एकांकी है। अतएव विषय की दृष्टि से यह एकांकी मनो-सामाजिक क्षेत्र में आती है। जंगूसिंह और बलीसिंह नामक लुटेरे एक सेठ के लड़के शान्ती को उठाकर ले आते हैं और फिरौती के रूप में क्रमशः सोलह, दस और फिर आठ हजार रुपये की मांग करते हैं। कंजूस लाल अपनी पत्नी (जो शान्ति की सौतेली मां है) के कहने में आकर रुपयों को इन लुटेरों के पास नहीं पहुंचाते हैं और यह मान लिया जाता है कि शान्ती को डाकुओं ने मार डाला है। दूसरी ओर, जंगू और बली मां-बाप की इस निर्दयता और मनुष्य की इतनी भी कीमत न देख दुःखी हो शान्ती को छोड़ देते हैं। शान्ति पुनः घर पहुंचता है व लेकिन लाला और

1- औलादी का बेटा- पृ0 97

2- बाहर का आदमी- पृ0 287

उनकी पत्नी पुत्र शान्ती को जीवित मानने से इन्कार कर देते हैं। उसे प्रेत करार कर उसे घर में प्रवेश नहीं देते हैं। शान्ती के हृदय पर इस अमानवीयता की बड़ी गहरी ठेस पहुंचती है। वह जंगू और बली के साथ डाकू बन जाता है और पहले ही डाके में लालची पिता और सौतेली मां को उनका सारा धन बटाकर अपने प्रति किये गये व्यवहार का प्रतिशोध ले लेता है। लेकिन जंगू और बली द्वारा अपने माता-पिता को दी गयी गाली, उन पर थूकने और कुत्ते के पिल्ले सहित उसके माता-पिता और एक अन्य के खून कर दिये जाने से उसके अन्दर का मानव तत्व पीड़ित हो उठता है और वह उन्हीं बन्दूकों से इन डाकुओं को मार डालता है। ऐसा कर मानों वह अपनेकृत्य का बदला ले लेता है। लेकिन जंगू और बली ने उसे पाला-पोसा, माता-पिता द्वारा परित्यक्त होने पर भी उसे आश्रय दिया- अत: उन्हें मारकर उसने एक और पाप किया है। अतएव इस पाप से मुक्त होने के लिये वह स्वयं को गोली मार लेता है और जंगू की बेटी कल्ली के समक्ष अपना दोष स्वीकार कर मर जाता है। मरकर अब न तो वह अपने माता-पिता के लिये बाहर का आदमी रहा, न ही जंगू और बली के लिये- उसके घर के द्वार उसके लिये खुल रहे हैं। एकांकी में म शान्ती के उन्माद को बार-बार उतार-चढ़ाव द्वारा व्यक्त किया गया है। फलत: यहां द्वन्द्व और उससे नियोजित कार्य की ऊष्मा आदि से अन्त तक देखने को मिलती है लेकिन इस रु उन्माद में मूल्य के प्रति जागरूकता का अभाव ही प्रकट होता है। लाला और उसकी पत्नी के प्रति शान्ती के व्यवहार में कोई तर्क की गुंजायश नहीं किन्तु बली गंजू के प्रति शान्ती का व्यवहार उन्माद की अपेक्षा यदि विवेक संयत बताया जाता ह तो एकांकी में उदात्त-मूल्यों की अपेक्षाकृत गहन सृष्टि होती। एकांकी मेंकल्ली जैसे कोमल चरित्र को अन्य कठोर चरित्रों के विपर्यय में रखकर द्वन्द्व को प्रभावशाली बनाया गया है। शान्ती जैसा व्यक्ति चरित्र एकांकी को विश्वसनीयता का धरातल भले ही न देता हो, कलागत-सत्य के धरातल पर अवश्य खड़ा करता है। एकांकी के कतिपय प्रसंग मार्मिक बन पड़े हैं, यथा- माता-पिता द्वारा शान्ती को प्रेम समझना, शान्ती का अशान्ती बनकर माता-पिता से प्रतिशोध लेने का संकल्प, कल्ली द्वारा यह सुनकर कि शान्ती डाकू हो गया, रो पड़ना और ईश्वर से प्रार्थना करना कि डाके में

शान्ती सहित सभी मर जायें, डाके की सफलता में प्रमच डाकुओं को शान्ती द्वारा प्रताड़ना और उन्हें बन्दूक की गोली से मार डालना और अन्त में ~~प्रपत्र~~ कल्ली की गोद में शान्ती द्वारा दम तोड़ना। इस एकांकी में पूर्वादृश्य(Flash-back) दृश्यों द्वारा एक नया शिल्पगत प्रयोग किया गया है- बार-बार दृश्य परिवर्तन के लिये गोलाकार मंच की सम्भावनाओं को यहाँ प्रयुक्त किया जा सकता है। प्रकाश की मंच पर आँख-मिचौनी दृश्य परिवर्तन के लिये की गयी है। इस प्रयोगवादी शिल्प ने एकांकी को उपरान्त अतिनाटकीय कथ्य के एक अभिनव रंग मूल्य प्रदान किया है।

'शाकाहारी' स्वयं लाल के अनुसार अंक-प्रकरण(उत्सृष्टिकांक) की शैली में रचा गया है- 'उत्क्रान्ता विलोमरूपा सृष्टिर्यत्रे' - अर्थात् जिसमें विलोम रूप सृष्टि हो(साहित्य-दर्पण) अथवा 'उत्क्रमणोन्मुखा सृष्टि जीवितं यासांता: उत्सृष्टिका:, शोचन्त्य: स्त्रिय: ।ताभिरंकीत्वात उत्सृष्टिकांक:' - अर्थात् ऐसी स्त्रियों का वर्णन जो किसी कारणवश शोकार्त हों अथवा संकट में हों(नाट्य दर्पण)। दोनों दृष्टि से 'शाकाहारी' को देखने से मालूम होता है कि यहाँ एक ओर दो पीढ़ियों के मध्य का वैचारिक अन्तर (जिसे 'जेनरेशन-गेप' के नाम से पहिचाना जा सकता है) प्रकट होता है जो पूरी तरह गम्भीर है और विलोम रूप की सृष्टि करता है। दूसरी ओर, कमला पर बड़े बाबू द्वारा ढायी आफत का भी चित्रण करता है। यह एकांकी नितान्त सामाजिक विषय से सम्बंध रखती है युवा पीढ़ी के रोमान्स और प्रेम को एक नये तेवर के साथ प्रस्तुत करती है। पोस्ट आफीस में नौकरी करनेवाले बड़े बाबू को इस बात पर क्षोभ है कि उनकी पुत्री कमला के पड़ोस के 'लौण्डों' के साथ प्रेम- पत्र व्यवहार चलते हैं - उनके अनुसार 'पोस्टकार्ड जैसी सूरत वाले इन लौण्डे-लौण्डियों' को किसी भी कीमत पर रास्ते पर लाना है- इसके लिये कमला को कमरे में बन्द कर बाहर से ताला लगाकर पहरे पर परेम मामा और मुंशी जी को बैठा जाते हैं। बजाय रखवाली के परेम मामा अपनी एक प्रेमिका का स्वयं के नाम लिखा प्रेम-पत्र मुंशी जी से पढ़ाते हैं। बड़े बाबू के प्रयत्न स्वरूप दारोगा जी तीन तथाकथित 'गुण्डे'

लड़कों को पकड़ लाते हैं। बड़े ही नाटकीय ढंग से ज्ञात होता है कि उनमें से एक वीरेन्द्र वही लड़का है जिसकी कमला के साथ मँगनी हो चुकी है। इस प्रकार बड़े बाबू, परेम मामा सभी का कमला को लेकर चिन्तित होने की समस्या आसानी से सुलझ जाती है। एकांकी को हल्के-फुल्के हास्य प्रसंगों से जोड़ा गया है। परेम मामा और मुंशी जी की बातचीत, परेम मामा ब को लिखे गये प्रेम-पत्र का प्रसंग, बड़े बाबू द्वारा पोस्ट आफिस की शब्दावली के अप्रासंगिक प्रयोग, परेम मामा का 'फ' उच्चारण ऐसे ही नाट्य-आयाम हैं जो हास्य की हल्की-फुल्की रेखाओं को उकेरते हैं। 'शाकाहारी' शीर्षक ही एकांकी में वर्णित प्रेम-प्रसंगों की शाकाहारिता सिद्ध करता है। बड़े बाबू, परेम, मुंशी आदि बहुरंगी लोकधर्मी प्रवृत्ति को उजागर करने वाले चरित्र हैं। यही लोक धर्मिता एकांकी की मनोवृत्ति है जिसे यथार्थ मंच की सम्भावनाओं के साथ प्रस्तुत किया गया है।

'शरणागत' जीवन और मृत्यु के मध्य संघर्ष की कथा है और इस संघर्ष में अन्तत: मृत्यु को परास्त कर जीवन की विजय का सन्देश दिया गया है। मृत्यु का भय ही मनुष्य को संसार के मोह बन्धनों में बांधता है। इसके लिये मनुष्य अनेक प्रकार के उपाय करता है, मृत्यु से बच पाने के लिये, उसे परास्त करने के लिये अनेक व्यूहों की रचना करता है। लेकिन मृत्यु फिर भी किसी को नहीं छोड़ती है। मृत्यु की इस भयावहता को चुनौती देते हैं राजा परीक्षित जो सात दिन के अनन्तर तक्षक के विष दन्त से घात होकर इस संसार से मुक्त होनेवाले हैं। शुकदेव उन्हें जीवन और मृत्यु की अन्योन्याश्रितता का पाठ पढ़ाते हैं, मृत्यु को जीवन की ही एक प्रक्रिया समझ कर उससे अभय प्राप्त कराते हैं। दूसरी ओर, परीक्षित के पुत्र जनमेजय अपने भाइयों के साथ पितृहन्त बब तक्षक से प्रतिशोध लेने और अपने पिता को अकाल-मृत्यु से बचाने को कृत संकल्प हैं। परीक्षित की माता उत्तरा का पुत्र मोह उन्हें तक्षक के नाश के लिये प्रेरणा देता है। जनमेजय तक्षक का पीछा करता है और भयभीत तक्षक राजा परीक्षित का शरणागत बनकर जनमेजय तक्षक का पीछा करता है और भयभीत तक्षक राजा परीक्षित का शरणागत बनकर जनमेजय से अपने प्राणों की रक्षा करता है।

एक प्रकार से मृत्यु यहाँ पूर्व ही जीवन से हार चुकी है क्योंकि वह उससे प्राणों की भिक्षा माँग चुकी है। तक्षक को परीक्षित के समक्ष दूसरी हार तब खानी पड़ती है जब उसके विष-दंत के पूर्व ही परीक्षित अपने सत्य बल और शरणागत धर्म एवं जीवन की सहज प्रक्रिया के रूप में मृत्यु को स्वीकार कर लेते हैं। यह जीवन में मृत्यु के अभय को स्वीकार करने से ही सम्भव है। अन्यथा, तक्षक को तो जनमेजय का बल-कौशल, चक्रव्यूह और उत्तरा का अभिशाप भी किसी तरह नहीं रोक सकता। तक्षक जिस विष को परीक्षित के लिये लाया था, अब उसके ताप से स्वयं जल उठता है। तब जनमेजय उसे शाप देता है कि जिस कलियुग ने परीक्षित को निर्दोष होने पर भी शाप दिया और अभिशप्त बनाया अब से काल-सर्प उस कलियुग का ही दंश करेगा।- एकांकी की विषय वस्तु यद्यपि शुद्ध पौराणिक है किन्तु उसमें व्याप्त जीवन और मृत्यु के संघर्ष की कहानी सार्वकालिक है और शुकदेव जैसे चरित्र के द्वारा एक दर्शन के रूप में अभिव्यक्त होती है। शुकदेव और जनमेजय का द्वन्द्व एक प्रकार से दर्शन और व्यवहार जगत के मध्य का द्वन्द्व है। इसी के मध्य परीक्षित अनिर्णय की स्थिति में है, मानसिक तनाव में डूबता उतराता है। उत्तरा का पुत्र मोह इस द्वन्द्व के मध्य भावना और ममत्व की एक प्राण-रेखा खींचने वाला है। तक्षक का भय एकांकी में कार्य-व्यापार की आन्तरिक लय को त्वरा देता है। शृंगी ऋषि और ऋषि-पुत्र का आगमन एकांकी के कार्य व्यापार को अतिरिक्त उष्णता देता है क्योंकि अन्तत: ये ही परीक्षित को दिये गये शाप के मूल कारण हैं। नाटकीय द्वन्द्व का प्राकाट्य कार्य व्यापार में है और यह कार्य व्यापार पृष्ठभूमि में सहसा कई रथों के दौड़ने की आवाज, 'जन-कोलाहल', 'पृष्ठभूमि में तूफान और गंगा की लहरों का ऊपर उठ-उठकर आकाश में दौड़ना', 'भयाकुल तक्षक का प्रवेश और परीक्षित के चरणों में गिरना', 'शक्तिपूर्ण हँसी के साथ ऋषि-पुत्र का प्रवेश', 'अन्धकार के मध्य उठता हुआ मंत्र का स्वर', 'धौंसे की आवाज के साथ क्रमश: मंत्र का स्वर और सातवें धौंसे द्वारा परीक्षित के मृत्यु-दिवस की सूचना', 'कश्यप और तक्षक की दुरभिसन्धि', मृत्यु से भयभीत', 'उत्तरा के अतिरिक्त अन्य का तक्षक के आगमन से

अनभिज्ञ होना` आदि द्वारामूर्त हो उठता है । यही नाटकीय त्वरा इस सम्वाद में सशक्त रूप से अभिव्यक्त हुयी है -

उत्तरा- आगे न बढ़ना----- आगे न बढ़ना तक्षक । रुक जा वहीं ।

श्रुतसेन- भीमसेन, उग्रसेन कहां हैं ? राजामाता कहां है वह तक्षक ?

उत्तरा- (डरी हुई) वह है । वह है--- देखते नहीं ?

श्रुतसेन- कुछ नहीं दीखता ।

भीमसेन- शून्य है वहां ।

उग्रसेन- कहां ?

श्रुतसेन- कहां देख रही हो राजमाता ? मुझे दिखाओ ।

उत्तरा- वह देख रही हूं-----देखते क्यों नहीं, वह बढ़ा चला आ रहा है ।

श्रुतसेन- ओह, मुझे क्यों नहीं दीखता ?

भीमसेन- उग्रसेन कहां है? आह, कहां है ?

उत्तरा- आह, वह आ गया--- देखो--- बाण चलाओ--- कृपाण से वार करो ।

स०स्वर- कहां? कहां---- हमें तक्षक नहीं दीख रहा है । दृष्टिदो हमें । कहां है हमारा शत्रु ।

उत्तरा- (करुणा से) कैसे दिखाऊं । तुम सब देखते क्यों नहीं ? इतने महारथी।------- यह शक्तिमय सेना क्या अन्धी हो गयी? (रो पड़ती है) देखो,वह देखो,तक्षक आ गया ।[१]

`शरणागत` एकांकी रेडियो शिल्प पर आधारित है । फलतः ध्वनि को यहां विशेष महत्व दिया गया है । मंत्र गान को `मैटलिक स्वरों` का रूप देकर इस ध्वनि प्रभाव को सशक्त बनाया जा सकता है । प्रारम्भ की दृश्य योजना मंच पर पर्दों की व्यवस्था का संकेत करती है ।`शरणागत` पौराणिक और सार्वकालिक जीवन संवेदनाओं का एक समन्वय है ।

१- शरणागत- नाटक बहुरंगी- पृ० १७२-१७३

'गली की शांति' समाज में वेश्या की स्थिति और उसके उद्धार जैसे प्रश्नों को उभारने वाला एकांकी है। सामाजिक जीवन मूल्यों को उभारने के लिये बिहारी जैसे चरित्र का सर्जन किया गया है। वह सराफा बाजार में एक प्रतिष्ठित व्यापारी है। शान्ति नाम की एक वैश्या-पुत्री की उसके घर के साथ एक परम्परा से चली आ रही आत्मीयता है। बिहारी मरती हुई शान्ति की मां को यह वचन दे चुका है कि वश शान्ति को किसी संभ्रान्त घराने में व्याह कर उसे वेश्याओं के मोहल्ले से मुक्त करायेगा। लेकिन इस कठिन कार्य की सिद्धि के लिये एक ओर उसे असामाजिक तत्वों से लड़ना होता है और दूसरी ओर शांति की मौसी के अन्दर परंपराओं से घर किये भय और कमजोर इच्छाशक्ति के दोषों को भी दूर करने का प्रयत्न करना होता है। ऐसे में, बिहारी के लिये परीक्षा की कठिन घड़ी तब आती है जब शान्ति की मौसी द्वारा पूर्व कभी किये शान्ति के नाम पर सौदे को लेने एक व्यापारी बिहारी की दूकान पर आता है। बिहारी के लिये यह स्थिति मानों उसके उन स्वप्नों के चूर चूर हो जाने की है जिनके लिये वह प्रयत्नशील है और जिनके लिये उसने शान्ति की मां को वचन दिया था। ऐसी विकट परिस्थिति में शान्ति की मौसी अपने पूर्व कृत्यों के प्रायश्चित स्वरूप उस व्यापारी आदमी को जहर देकर मार डालती है और इस प्रकार शान्ति के कुलीन जीवन की ओर अग्रसर होने की परिस्थितियों को सुकर कर देती है। एकांकी में निर्दोष और भोली बालिका शान्ति समाज सुधारक और कर्तव्य-परायण बिहारी, और परम्पराओं और संस्कारों के कीचड़ में फंसी लेकिनमुक्त होने को छटपटाती शान्ति की मौसी का चित्रण स्वाभाविक है। यहां बिहारी का समाज के गुण्डा तत्वों के साथ टकराने और उसकी प्रतिक्रिया में अपने निश्चय को दृढ़ बनाते जाने की प्रक्रिया ही कार्य व्यापार को बढ़ाती है। दूसरी ओर, शान्ति की मौसी द्वारा इन्सपेक्टर को अपना संचित धन दे डालना और फिर इस रहस्य का उद्घाटन होना कि मौसी ने बचपन में ही रुपये के लालच में आकर शान्ति का सौदा कर डाला था- बिहारी की 'ईहा' शक्ति के मध्य बाधा बनकर उपस्थित होते हैं। लेकिन एकांकी के अन्त में मौसी ही संपूर्ण कार्य व्यापार का केन्द्र बिन्दु बन जाती है और बिहारी की भूमिका अपेक्षाकृत

विरल हो जाती है । एक प्रकार से मौसी के चरित्रोद्घाटन में बिहारी के क्रमिक विकासशील चरित्र का धूमिल होना संरचनात्मक कौशल का अभाव ही दीखता है । एकांकी का क्षेत्र बाजार है और यह दृश्य योजना एक प्रकार से रंगमंच संकल्पना का विस्तार दर्शाती है । गली का चहल-पहल का बढ़ना, कोठों से तबले हारमोनियम और घुंघरुओं के स्वर सुनायी पड़ना वेश्याओं के मोहल्ले के वातावरण को यथार्थरूप में अंकित करने में सफल है । इस वातावरण के मध्य लडुन, नैनू, इन्सपेक्टर आदि का सर्जन वातावरण को और भी अर्थ देता है । यह एकांकी जीवन के बहुरंगों को विपर्यय के साथ प्रस्तुत करने में सफल है ।

'चौथा आदमी' मुक्त आकाशी मंच पर खेला जाने वाला लोकधर्मी परम्परा का एकांकी है । मंच पर तिराहा भी है, भीड़ भी है, शोर भी है- लेकिन ये सभी एक काल्पनिक मंच व्यवस्था के द्योतक हैं । संस्कृत या लोक नाट्य का अनौपचारिक और अयथार्थवादी फार्म यहां उभरकर सामने आता है । क्रमश: तीन आदमी मंच पर आते हैं और पेट व धर्म के नाम पर जनता को लूटते हैं- उसके विश्वास के साथ विश्वासघात करते हैं । चौथाआदमी अन्धा बनकर विश्वासघात करता है लेकिन एक अन्धा भिखारी उसकी इस मूल्यविहीनता पर चोट करता है, अपने पास के पैसे देकर उसे जैसे उसकी क्षुद्रता से परिचित करा देता है । चौथे आदमी का यह हृदय परिवर्तन एक प्रकार से मूल्य मूल्यमूल्यहीन समाज में मूल्यों की पुनप्रतिष्ठा की ओर रचनाकार का एक प्रयत्न है । इस एकांकी की वस्तु चेतना पर्याप्त विस्तृत और गहन है किन्तु एकांकी का शिल्प उस विस्तार को समेट नहीं पाता । ऐसे विषय सम्पूर्णनाटक की अपेक्षा रखते हैं । एकांकी को आवेगों के मध्य विस्तार प्रदान किया गया है- फलत: भाषा में भी वही आवेगात्मकता का समावेश दिखायी देता है । अभिनटन द्वारा इस भाषा को एक नवीन अर्थ बोध प्रदान किया गया है- 'सुनो मेरे बाबू।देखो मेरे भइया। ।कोई खास सवाल नहीं। कोई बड़ी मांग नहीं। रूपया दो रूपया नहीं। रूपया अठन्नी नहीं। अठन्नी चवन्नी नहीं। चवन्नी दुअन्नी नहीं। पीली इकन्नी भी नहीं। । महज दो पैसा। महज दो पैसा। पेट का सवाल है।महज यही हाल है ।'

(जैसे कोई पास जाते हुए कुछ फेंक कर देता है और यह आदमी अभिनय से उसे लोक लेता है।)[१] बहुरंग जीवन को देखने की जो एकांकीकार की दृष्टि है, चौथे आदमी द्वारा वही दृष्टि अन्तत: सम्पूर्ण एकांकी और उसके माध्यम से सम्पूर्ण जीवन को अपनी सीमा में ले लेती है-`भाग गये। मुझसे भागकर बच सकोगे ? चोर चोर से नहीं बच सकता। (रुककर उसी दिशा में देखता हुआ) भागो भागो। मैं देख रहा हूं तुम लोगों को। ---`[२]

`कालपुरुष और अजन्ता की नर्तकी` प्रतीकात्मक एकांकी कहा जा सकता है। यहां `कालपुरुष` और `अजन्ता की नर्तकी` एकांकी के चरित्रों को उनका स्वरूप बोध कराने का हेतु बनकर प्रकट हुए हैं। इसके आगे इन शब्दों की अन्य कोई प्रासंगिकता दिखायी नहीं देती है। यह एकांकी उस परम्परा की रचनाओं में से एक है जिनमें प्रेम और विवाह को त्रिकोणात्मक संघर्ष के मध्य उठाया जाता है और उसके कारण उत्पन्न नाटकीयता को गति प्रदान की जाती है। इस एकांकी संग्रह में `सुबह से पहले` नामक एकांकी में ऐसा ही त्रिकोण देखने को मिलता है। प्रस्तुत एकांकी में भी यही त्रिकोण है। अनूप किसी अन्धी भिखारिन का बेटा है लेकिन आज की सम्पन्न स्थिति में वह अपने अतीत को विस्मृत कर देना चाहता है। इसलि- इसीलिये वह अपनी भिखारिन मां का चित्र भी अपने घर में लगाना नहीं चाहता। उसका अतीत उसे अपने शिकंजे में न घेरे- इसके लिये वह `गूंगी भिखारिन` को भी अपनी आंखों के सामने देखना नहीं चाहता है। वह केवल वर्तमान में जीना चाहता है- उस वर्तमान में जहां तक पहुंचने में उसकी पत्नी प्रभा ने समाज और परिवार का विरोध करके भी उसका साथ दिया है। इसके लिये अनूप प्रभा के प्रति `कृतज्ञ` है।-`तुमने मुझे इतनी ममता दी है, इतना आदर ,प्रेम विश्वास। इतना कृतज्ञ हूं मैं कि---।`[३]

१- चौथा आदमी- पृ० २०२-२०३

२- वही-पृ० २१४

३- कालपुरुष और अजन्ता की नर्तकी- पृ० २२५

लेकिन मैं वैसी असत्य दुनियां में नहीं रहती ।- जो बाहर- भीतर दो टुकड़ों में बंटी हो । बाहर कुछ । भीतर कुछ ।। जहां कुछ विष जैसा घुटा घुटा हो । जहां बुजदिल बसते हों । जहां----- ।`[१] --------- छूनानहीं मुझे खबरदार । एक ही संग प्रेम, दया और झूठ । मुझे मुक्ति देने आये हो ? एक दया और ?`[२] एकांकी में तीव्र नाट्यानुभूति है और इस अनुभूति का वहन करने में भाषा और उसमें प्रयुक्त शब्दों की अर्थवत्ता कतिपय स्थानों पर द्रष्टव्य है ।- `जरूर कराओ । पर याद रखना । वह पेण्टिंग मेरी नहीं होगी, तुम्हारे विकारों की होगी । तुम्हारी होगी, तुम्हारे झूठे व्यक्तित्व की होगी । (कण्ठ भर आता है) अच्छी भी रहेगा जो भयानक चित्र तुम्हारे भीतर है, वह आयल पेण्टिंग बनकर तुम्हारे गले में लटका करेगी । अच्छी पहिचान रहेगी ।[३]

\+ + + +

`वह स्वभाव है तुम्हारा । तुम्हारे रक्त में कहीं न कहीं वह भिखारी जरूर बैठा है जो----- नहीं, नहीं, कुछ नहीं । कुछ नहीं । कुछ नहीं । -----(कांपने सी लगती है) पिस्टल हाथ से छूटकर नीचे गिर जाता है।) --- कुछ नहीं----कुछ नहीं +--- ।[४]

`नाटक बहुरंगी ` संग्रह का `मैं आइना हूं` नामक एकांकी लाल के एन एकांकियों में प्रतिनिधि एकांकी कहा जा सकता है जो `समाज के भीतर से, समाज की

१- कालपुरुष और अजन्ता की नर्तकी- पृ० २३३

२- वही- पृ० २३६

३- वही- पृ० २३६

४- वही- पृ० २३८

धारा से आधुनिक मनुष्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करता है।[1] इसमें निहित व्यक्ति गत पीड़ा और द्वन्द्व[2] ही इस एकांकी का मनोवैज्ञानिक धरातल है। इस मनोवैज्ञानिक धरातल के संपूर्ण एकांकी में व्याप्त होने के कारण अन्त में जाकर इसके द्वारा छोड़ा गया एकान्त प्रभाव इसकी अपनी विशेषता है। शीबू (शिवचन्द) ऐसा युवक है जिसे उसके घर वाले सहानुभूति और प्रेम प्रदान करना चाहते हैं लेकिन इसके लिये वे शीबू का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त कर उसे परजीवी(Parasite) बनने को भी बाध्य करते हैं। शीबू को अपने प्रतिप्रदर्शित की जा रही दया और उसके अन्दर प्रच्छन्न उपेक्षा स्वीकार नहीं। वह मानसिक धरातल पर टूट जाता है और अर्द्ध-विक्षिप्ता-वस्था में स्वयं को गोली भी मार बैठता है। डाक्टर जैन उसे अस्तित्व-बोध हेतु कर्म और पुरुषार्थ का सन्देश देते हैं। लेकिन डाक्टर प्राप्त इस विश्वास को वह व्यावहारिक जीवन में उतार नहीं पाता और अपने पिता एवं बड़े भाई के उलाहनों का शिकार बनता है। उसमें कर्म के प्रति ईमानदारी नहीं है और अपने पुरुषार्थ को वह दूसरों पर लादना चाहता है। इसीलिये डाक्टर कीयह प्रेरणा उसके लिये बेमानी सिद्ध होती है- 'सुनो' तुम नये उत्साह और विश्वास के साथ अपने घर जाओगे। अपने को कर्मरत कर दोगे। तुम्हें जो-जो नहीं मिला है, एक-एक करके मिलेगा, मैं जिम्मेदार होता हूं। और तुम्हें भी अपने पुरुषार्थ का हिसाब देना होगा। तुम्हें वह सब मिलेगा जिससे वास्तव में जिया जाता है। मैं साक्षी रहूंगा।[3] जीवन में प्राप्त असफलता से शीबू का विश्वास फिर टूटता है और इस बार वह डाक्टर को गोली मारकर समाप्त कर देना चाहता है। डाक्टर गोली से जख्मी के उपरांत शीबू को पुलिस से बचाता है और उसे पुनर्विश्वास दिलाता है। वह दर्पण बनकर समक्ष आता है। शीबू को उसमें अपनी सही तस्वीर दिखायी दी है- आत्म-साक्षात्कार हुआ है। उत्सर्ग की इस भूमिका के साथ डाक्टर शीबू को उसके उस रूप का

१- आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच- पृ० ११०

२- नाटक बहुरंगी-पृ०२८७

३- मैं आइना हूं- पृ० २५३

पुनर्स्मरण करा देता है जिसके लिये उसने पूर्व प्रयत्न किया था । एकांकी में `मैं जानता हूं` वाली डाक्टर की अवधारणा पूरी तरह से स्पष्ट न होकर धुंधली है । शीबू ने डाक्टर के अन्दर जो उत्सर्ग कीतस्वीर देखी है क्या वह उत्सर्ग शीबू को जीवन में, परिवार के मध्य सफलता प्रदान कर सकता है ? सम्भवत: एकांकीकार परिवारजन के लिये अपनी इच्छाओं , अपेक्षाओं और अस्तित्व-बोध के उत्सर्ग की बात कहना चाहता है जो एकांकी के सीमित शिल्प में एक साथ समेटी नहीं जा सकी है । शीबू की अतिभावुकता अर्द्धविक्षिप्तता और जिन्दगी से उकताहट (जबकि अभी उसने स्वयं को जिन्दगी जीने की सामर्थ्य के काबिल भी नहीं बनाया है) कहीं-कहीं उबानेवाली है- इसका कारण यह भी है कि शीबू के पास स्वयं के प्रति `पिता और भाई द्वारा दी जा रही उपेक्षा` और `अस्तित्व के नकार` जैसे `एब्स्ट्रैक्ट` कारणों के कई कोई ठोस या `कान्क्रिट` कारण नहीं है । यही कारण है कि उन स्थानोंपर जहां शीबू अपने जीवन की निस्सारता की बात करता है और डाक्टर उसेप्रबोधन देता है - एकांकी की गति शिथिल हो जाती है । यह एक शिल्पगत दोष है जिसका कारण एकांकी के इस चरित्र का असाधारण चिन्तन-धरातल है । साथ ही एक तथ्य यह भी द्रष्टव्य है कि एकांकी का अभीष्ट आज की युवा-पीढ़ी के मानसिक द्वन्द्व को उनकी रूमानी चिन्तनशीलता के मध्य उभारना है लेकिन प्रस्तुत एकांकी में चरित्रांकन के असन्तुलन के कारण `बीमार` (शीबू) से अधिक महत्वपूर्ण `उसका इलाजकर्ता` हो गया है । तथापि युवा पीढ़ी के स्वयं द्वारा खड़े किये गये आत्म-संत्रास और आत्म-पीड़न को इस एकांकी में अनुभूति की तीक्ष्णता के साथ व्यक्तकिया गया है । यह एकांकी की उपलब्धि है- विशेषकर उस स्थिति में जब ऐसे मनोवैज्ञानिक धरातलों से सम्पृक्त विषयों पर अभी लिखना प्रारम्भ ही हुआ था । एकांकी के सम्वादों में कार्य की गतिशीलता कहीं-कहीं उन्हें अभिनयात्मक अर्थ प्रदान करती है । उदाहरण के लिये कार्यमूलक सम्वाद -

(शीबू अचानक पिस्टल चला देता है। डाक्टर फर्श पर गिरता है। और वह दृश्य देखकर शीबू चिल्ला उठता है।)

शीबू-(डाक्टर से टिपट जाता है) डाक्टर। डाक्टर यह क्या हो गया तुझे ?
(पुकारता है) कम्पाउण्डर ! दौड़ो कम्पाउण्डर--- कम्पाउण्डर ।
(कम्पाउण्डर और नौकर दौड़े आते हैं, शीबू फिर फोन उठा लेता है।)

शीबू- सिविल हास्पीटल! ---सर्जन----- दौड़ो----- डाक्टर जैन पर पिस्टल चल गयी । बचा लो ! बचाओ उसे !(रुककर) पुलिस! पुलिस ! जल्दी आओ---- डाक्टर जैन का खून !हत्यारा पकड़ा गया ।[1]

\+ + + +

शीबू- बचाओ ! बचाओ ! मेरे डाक्टर को ! रोक दो ! खून ! - मैंने खून किया है डाक्टर जैन का ! गिरफतार कर लो मुझे ! बांध लो मुझे ! डाक्टर । अब मैं नहीं मरूंगा ----- सच अब नहीं मरूंगा ---- कभी नहीं ! (उसी दरवाजे से लगकर रोने लगता है।)[2]

\+ + + +

सम्वादों में प्रच्छन्न यह आन्तरिक लय जो कार्य व्यापार के साथ चलती है- इस एकांकी को आस्वादन के स्तर पर खड़ा करती है । `मैं आइना हूं` उन यथार्थवादी एकांकियों में से है जो अयथार्थ नाट्य स्थितियों के मध्य गुजरते हैं और एक सम्पूर्ण प्रभाव छोड़ता है ।

नष्ट संग्रह का अंतिम एकांकी `जादू बंगाल का` सक्क -रंगमंच की सम्भावनाओं को उजागर करने वाला एकांकी है । इसमें अभिनेता और दर्शकों के मध्य सहभागिता का

१- मैं आइना हूं - पृ० २५८

२- मैं आइना हूं- पृ० २५६

एक प्रयोग स्तरीय प्रयत्न मिलता है । इस प्रकार मंच की बंधी बंधायी रूढियों को तोड़कर यह एकांकी व्यापक प्रसार देता है । जीवन के बहुरंगों में से एक रंग है `जादू बंगाल का` । विषय और शिल्प दोनों ही स्तरों पर यह एकांकी एक खुला आकाश देता है । लोक-मंच की उन्मुक्तता को ही य हां चा`त्र प्रदान किया गया है । जमूरे और जादूगर की बातचीत में छिपी संगीतात्मकता, लय और इनके मध्य जादूगर की बांसुरी और जुड़गुड़ी का स्वर- सब मिलकर वातावरण में जीवन के लोक रंगों को अनुस्यूत करने वाले हैं । इस लोकधर्मी एकांकी को `रंग` मूल्य प्रदान करनेवाला तत्व है उसकी भाषा । यह भाषा अनेक नाट्य-प्रभावों को जन्म देनेवाली है । शब्दों के द्वित्व वर्ण वाले प्रयोग, शब्द विशेष को पकड़कर आगे का सम्वाद बढ़ाया जाना, वाग्विलास द्वारा सम्वाद को आगे से आगे बढ़ाया जाना, अधूरे वाक्य और इन सबसे सम्पृक्त जादू के अजीबोगरीब खेल इस सड़क एकांकी को अर्थ देने वाले हैं । सम्वादों में प्रयुक्त अनर्गल प्रलाप भी एकांकी के आस्वादन को सघन बनाते हैं । इन सम्वादों का वैशिष्ट्य ही इसमें है कि वे उन शब्द और शब्द में निहित ध्वनि की स्थितियों को लेकर चलते हैं जो नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने में सक्षम हैं । निम्नांकित उदाहरणा के रेखांकित अंश इस तथ्य के प्रमाण हैं :-

जमूरा- बाज्जीगर । डिब्बे से बाहर निक्कालो ।

बाजीगर- बाहर क्यों ?

जमूरा- हम कुश्ती लड़ेंग्गा ।

बाजीगर- अबे इससे तो दारासिंह हार गया। मानसिंह भाग गया । तू क्या लड़ेगा ? भाग जायेगा--- भाग ।

जमूरा- नेंही भागेगा ।

बाजीगर- नहीं भागेगा ? तो ले निकालता हूं । होशियार---- खबरदार जमूरे ।[१]

\+ + + +

१- जादू बंगाल का - पृ० २६८

बाजीगर- अबे जमूरे, मुट्ठी क्यों बांधता है? खोल दे अपनी मुट्ठी ।
जमूरा- मेरी मुट्ठी मेंइ जादू्दू हैंइ ।[१]

\+ + +

`जादू बंगाल का` की रचना शीलता की विशेषता इस तथ्य में है कि यहां एकांकी प्रारंभ से अन्त तक मनोरंजन और हास्य-व्यंग्य के पुट द्वारा आगे बढ़ी है । इसीलिये एकांकी वस्तु-तत्व से सर्वथा विहीन होने पर भी प्रेक्षक और पाठकों को बांधे रखती रखती है । रंग-अन्वेषण की दिशा में यह एकांकी `रंग` के अनेक आयामों के मध्य उक्त एक आयाम को लेकर चलने पर भी अपने आपमें सघन प्रभाव को जन्म देती है ।

नाटक- बहुरूपी :

रचनात्मक-धरातल पर एकांकी लेखन के सन्दर्भ में क्रमश: विकासशील प्रक्रिया का दूसरा, अयथार्थ से यथार्थ धरातल की ओर चरण, उनके एकांकीसंग्रह `नाटक बहुरूपी` में देखने को मिलता है । भारतीय ज्ञानपीठ ने इसका प्रथमप्रकाशन सन् १९६४ में किया था । विगत पांच वर्षों में एकांकी-लेखन की दिशा में जो कार्य किया गया, उसके एक सम्पूर्ण चित्र इस संग्रह में देखने को मिलता है। इस संग्रह की रचनागत यथार्थता का संकेत डा० लाल के इस कथन से होता है-`नाटक का बहुरूपी तत्व यही है जिसके कारण जीवन और मनुष्य तथा उसके संघर्षों को नाटककार की रंगरूप की सीमा के कारण सीमित नहीं होना पडता । वह तोड़-मरोड़कर इस विधा में नहीं खींचा जाता। तब जीवन और मनुष्य की सारी शालीनता, उसकी सम्पूर्ण छवि यहांखंडित नहीं होने पाती ।----- वास्तविक एकांकी के महत्व की तुलना वर्षा के महत्व से की जा सकती है जो धरती और इन्सान को नया जीवन प्रदान करती है किन्तु जो अन्तत:

१- जादू बंगाल का- पृ० २६८

धरती से आकाश में उठी भाप के बादलों से ही बरसती है ।`[1] नाटक-बहुरूपी में समाज में अन्तर्हित प्रश्नों, स्थितियों और उनके मध्य लिये जाने वाले निर्णयों को दर्शाने का प्रयास किया गया है ।

संग्रह का प्रथम एकांकी `गुड़िया` मध्यवर्गीय समाज के प्रश्नों को त्रासद और बड़नी-मखमल-दनेदने-सुख अनुभूतियों के साथ अभिव्यक्त करता है । मातृ विहीन घर में पिता(दद्दा), छोटी पुत्री मनोरमा और बड़ी पागल दीदी सुशीला के अतिरिक्त कोई नहीं है । सुशीला का पागलपन दद्दा के लिये बहुत बड़ी समस्या है क्योंकि इसके कारण समाज में उनकी छोटी पुत्री मनोरमा का विवाह सम्बन्ध नहीं हो पाता है । सुशीला का पागलपन और उसके दाम्पत्य जीवन की असफलता इस छोटे से परिवार को जैसे अभिशप्त किये हुए है । मंच पर पर्दा उठने पर ज्ञात होता है कि आज मनोरमा को देखने के लिये लड़के वाले आनेवाले हैं । दद्दा और मनोरमा- दोनों मिलकर उनके स्वागत के लिये तैयारी में व्यस्त हैं । मातृविहीन घर में मनोरमा का इस प्रकार एकाकी अपने ही `अर्थ` तैयारी में लगी रहना एक विषम और विडम्बनापूर्ण स्थिति को प्रकट करता है । सुशीटा को मेहमानों के आगमन की सूचना से अनभिज्ञ कर अलग कमरे में बैठादेना एक दूसरी करुण स्थिति है । दद्दा जैसे आज अपनी बेटी मनोरमा के भविष्य निर्माण के अर्थ हर अप्रिय स्थिति का सामना करने को तैयार हो जाते हैं। मेहमानों का आगमन होता है और वे मनोरमा को अपने पुत्र के लिये पसन्द भी कर लेते हैं । लेकिन इसी बीच सुशीला का उन्माद की अवस्था में अपनी बीमार गुड़िया को सीने से चिपकाये सबके मध्य चले आने से बनी बनायी बात बिगड़ जाती है और मेहमान सन्देह और और अनिश्चय लिये लौट जाते हैं । मनोरमा के भविष्य का स्वप्न जैसे खण्ड-खण्ड हो जाता है, वह `खिलौने की गुड़िया` की सी निरर्थकता का अनुभव करने लगती है और फिर एक अनन्त प्रतीक्षा के साथ `दर्द को सहन कर लेने` का विश्वास स्वयं में जाग्रत

१- नाटक बहुरूपी-नाटक और एकांकी नाटक-

कर लेती है । एकांकी का शीर्षक 'गुड़िया' बड़ा ही 'सजेस्टिव' है जो एक साथ मनोरमा की शिशुवतता,अस्तित्वहीनता और पराश्रितता को संकेत प्रदान करती है । यथार्थ सामाजिक जीवनकी विडम्बनाओं को प्रकट करने में यह एकांकी सफल हुई है । एकांकी के चरित्रों में निहित आन्तरिक वेदनाओर उससे उत्पन्न तनाव नाटकीय कार्य को जन्म देने वाला है । विशेषकर एकांकी में 'कार्य-व्यापार ~~की सूचना~~ अन्त में केन्द्रित होकर प्रकट होती है ।-

बड़े बाबू- मैं आपको पत्र अवश्य लिखूंगा ।

(पस्थान।)

मनोरमा- (जैसे स्वगत)अच्छी बात है- आप अवश्य पत्र लिखेंगे । हम अवश्य जीते रहेंगे- क्यों दद्दा ? ठीक है न, क्योंकि हम हर दर्द सह सकते हैं । दद्दा जी,दद्दा जी, आप इस तरह क्यों देख रहे हैं ? अरे, आपकी आंखों में आंसू ! बुरी बात- दद्दा ! मुझे देखिये---- देखिये-----

(मनोरमा हंस रही है- जैसे दद्दा को भी संग हंसना पड़ता है । उसी बीच कमरे से सुशिला की पुकार आती है।)

सुशीला- दद्दा जी-----

दद्दा- आया बेटी !

मनोरमा- चलिये दद्दा । हम लोग जीजी की बीमार गुडिया के लिये डाक्टर ढूंढकर ले आयें ।

दद्दा - पर कहां ढूंढेंगे वह डाक्टर ?

मनोरमा- क्यों नहीं । मजं स्वयं डाक्टर है । है न !

(सुशिला दरवाजे पर आती हैं।)

सुशीला- दद्दा !

दद्दा- आओ बेटी !

मनोरमा- जिज्जी !

(मनोरमा सुशीला को अपने अंक में भर लेती है।)[1]

१- गुडिया- पृ० २१-२२

सुशीलाऔरमनोरमा दोनों ही के चरित्र में नाट्यवन्त भंगिमाएं निहित हैं । दोनों ही समाज की क्रूरता का शिकार हो रही हैं- एक विवाह से पूर्व और दूसरी विवाह के बाद । दोनों अबोध और निर्दोष है- यह एकांकी में निहित वेदना को और भी गहरा देता है । दद्दा में समाहित पिता और माता- दोनों ही का कर्तव्य-बोध एकांकी में प्राण-रेखा बनकर समक्ष आता है । समग्रत: यह एकांकी करुण परिवेश के मध्य सामाजिक यथार्थ को सामने लानेवाली एकांकी है ।

`वरुण वृक्ष का देवता` इस संग्रह का दूसरा एकांकी है जो अपने में निहित यथार्थ चेतना के कारण ऐतिहासिक होने पर भीसामयिक है । जैसा कि एकांकीकार ने ही उल्लेख किया है- यह एकांकी मुक्त आकाशी- मंच पर खेला जानेवाला `ओपन एयर प्ले` है । इस एकांकी के वस्तु तत्व की पीछे चर्चा हो चुकी है । यहां उस वस्तु में प्रच्छन्न चरित्र-विधान को लक्ष्य किया जाना आवश्यक है । चाणक्य के दो रूप यहां देखने को मिलते हैं - प्रथम, एक कूटनीतिक का जो अपने राज्य का उन्नयन करने के लिये राजनीति को साक्षी में हिंसात्मक कार्यवाही कराने में भी नहीं हिचकता । कालान्तर में यह राजनीतिक पाप प्रायश्चित की अपेक्षा करता है । चाणक्य की धर्मनीति उसे नन्द और गुप्तवंश के मध्य शत्रुता समाप्त करने हेतु प्रेरित करती है । इस हेतु वह नन्द वंश के अमात्य राक्षस और शकटार की बहिन सुवासिनी का विवाह-सम्बन्ध स्थिर कराता है । चाणक्य वरुण वृक्ष का देवता है जो राजनीति और धर्मनीति-दोनों ही को साक्षी बनता है । उसमें उक्त दो नीतियों के मध्य द्वन्द्व उठता है और अन्तत: राजनीति पर धर्मनीति की विजय होती है । एकांकी के मूल में यही द्वन्द्व छिपा हुआ है । इसे मलयकेतु की कथा एक कार्यमूलक आयाम देती है- अभीष्ट उद्देश्य को प्रकट करने में गाथा-गीत- `नावन्त निकतिप्पंजो-----` एक आवरण का कार्य करता है । यह आवरण ही एकांकी को जिज्ञासाकी ओर खींच लेती है । एकांकी में तत्कालीन वातावरण और परिवेश को यथाशक्ति उभारा गया है- मलयकेतु के हाथ में बीन और कन्धे पर दो पिटारों में झूलती बहंगी , `ब्राह्म मुहूर्त में एकाग्रचित` चाणक्य की कुटिया,शारंगरव

द्वारा चन्द्रगुप्त के शासन में अपनी `मर्यादा और दायित्व` में रहने की बात, काले वस्त्र और खड़ाऊं पहने चाणक्य का प्रवेश, मलय केतु द्वारा अपने गाथा-गीत को नटरचना के रूप में प्रस्तुत करना, मलयकेतु का राक्षस के गुप्तचर के रूप में प्रकट होना, ऐसे ही प्रसंग और स्थितियां हैं। एकांकी के प्रारम्भ में मलयकेतु के प्रवेश और मंच पर चक्रवत चलना, चाणक्य के ह कहने पर मलयकेतु द्वारा मछलियों, बगुले और केकड़े की गाथा का अभिनटन करना, - संस्कृत नाट्य-शिल्प के प्रयोग हैं। कक्ष-स्थापन और उससे देश,काल, कार्य, को एक रूप देने का कार्य ओपन-एयर-प्ले के लिये उपयुक्त है। अन्तत: चाणक्य द्वारा तलवार को अपने हाथों से तोड़ देना सार्थक नाट्य-प्रयोग है। वरुण-वृक्ष का देवता आधुनिक रंग-शिल्प की ओर बढ़ने का एक प्रयास कहा जा सकता है।

संग्रह का तीसरा एकांकी `बादल आ गये` प्रेम और विवाह की समस्याओं और उनके मध्य फूलती आन्तरिक इच्छाओं को द्वन्द्वात्मक सन्दर्भ में देखने का प्रयास है। डा० सरन, दीपा और मानिक एवं मानिक, शोभना और रामकिशोर प्रेम के दो त्रिकोण उत्पन्न करते हैं। एक हिल स्टेशन के डाक बंगले में ये सभी मिलते हैं और तब पारस्परिक सम्बंधों के मध्य विश्वास-अविश्वास का द्वन्द्व प्रारम्भ होता है। डा० सरन पहाडी पर फैले पीले बुखार को समाप्त करने आये हैं। इसी बंगले में एक दम्पति का आगमन होता है। पत्नी(दीपा) अपने पति(मानिक) की बेकार हुई दायीं टांग ठीक करने के लिये उसे समीप स्थित गंधक के सोते में स्नान कराने लायी है। संयोग यह है कि दीपा और सरन परस्पर पूर्व परिचित हैं और दोनों के मध्य कभी प्रेम का अंकुर भी फूट चुका है। दीपा और मानिक का विवाह परस्पर समर्पण भाव लिये हुए नहीं है और दोनों के मध्य एक खाई है। इस खाई को डा० सरन भरनाचाहता है। अपंग मानिक को अ उसके पैर ठीक हो जाने की सान्त्वना देकर उसके खोये विश्वास को लौटाना चाहता है। इसी बीच डाक बंगले में शोभना का आगमन होता है। जैसे सरन और दीपा पूर्व परिचय के सूत्र में बंधे हैं वैसे ही मानिक और शोभना भी। जिस प्रकार पूर्व सरन और दीपा को देखकर मानिक के मन में ईर्ष्या जागी

थी वैसे ही अब दीपा मानिक और शोभना को देखकर अपने दाम्पत्य जीवन के भटकाव को देखकर दु:खी होती है । मानिक को शोभना से मिलकर यह विश्वास हो जाता है कि वही उसकी अपंगता दूर करेगी । लेकिन उसकी भ्रान्ति तब टूटती है जब उसे ज्ञात होता है कि अब शोभना उससे प्रेम नहीं करती । वह रामकिशोर से विवाह का स्वप्न लेकर यहां आयी है । जब मानिक उसे बताता है कि रामकिशोर ने तो अन्तर्जातीय विवाह कर लिया है तो शोभना के नारीत्व को चोट लगती है और वह उल्टे पैर लौट जाती है । मानिक का खोया विश्वास जिसे शोभना ने और भी खण्ड-खण्ड किया है- पत्नी दीपा के पास मिलता है और दीपा व मानिक के इस मिलन को देखकर डा० सरन को विश्वास हो जाता है कि दोनों का अन्योन्य विश्वास मानिक को अपंगता को दूर करेगा और इस प्रकार मानिक और दीपा के इस डाक बंगले में पैर रखते ही इस त्रिकोण चरित्रों के अन्तस के बादल घुमड़ने लगे थे - अब छंटने लगते हैं और वे एक दूसरे से परस्पर विश्वास का अर्जन करते हैं । `बादल आ गये ` शीर्षक एक काव्यमूलक बिम्ब तो है ही, यहां उस नाटकीय तनाव को भी संकेत करता है जो इस एकांकी के चरित्रों के एक साथ सम्मिलन के कारण उत्पन्न हो जाता है । मानिक का उन्माद, दीपा का हत-भाग्य दाम्पत्य जीवन, शोभना का खण्डित विश्वास और डा० सरन की जीवन्त तटस्थता व कल्याण कामना एकांकी के प्राण तत्व हैं । मानिक का दीपा के प्रति अविश्वास, दीपा से उस `मैनर` की कामना करना जिसे स्वयं वह उसे नहीं दे सकता है, शोभना के साथ उसका अपनी शारिरीक और मानसिक यातना भुलाने का प्रयत्न और अन्तत: शोभना से टूटकर दीपा के पास उसका लौटना एक भटके प्राणी की अनिवार्य नियति को प्रकट करता है । `बादल आ गये` संवेदना के धरातल पर `सुबह से पहले ` एकांकी से साम्य रखती है । संयोगवश प्रेमियों का मिलना और उससे उत्पन्न आन्तरिक तनाव की स्थितियां दोनों ही एकांकियों में एक सी है । इस प्रकार का संवेदना तत्त्व अभुक्त व अप्राप्त आकांक्षाओं को प्रत्यक्ष-बोध कराने वाला है और उक्त आकांक्षा को पूर्ण करने की संकल्प शक्ति लिये हुए है । यही शक्ति एकांकी में उस भव्य मानवीय ईहा(volition) का समावेश करती है जो किसी भी रचना की अपेक्षा होती है।`बादल आ गये` में इसी मानवीय ईहा के दर्शन होते हैं ।

`मीनार की बाहें` में भी मानवीय ईहा के दर्शन होते हैं लेकिन वह एक दिवा-स्वप्न बनकर रह जाती है - यथार्थ धरातल पर उसकी अपूर्ति एकांकी में एक नाटकीय विडम्बना को जन्म देती है। नीरजा-अनूप और महीप दो युवकों के गुणों से अलग-अलग (——————————) प्रभावित है। महीप के व्यक्तित्व की जिन्दादिली, अपने मनुष्य होने का गौरव और यथार्थोन्मुखता नीरजा को प्रभावित करती है। दूसरी ओर, अनूप की भावुकता, जीवन के प्रति रोमानी-दृष्टि, रसमय जीवन बिताने की उत्कट इच्छा और यथार्थजीवन की अन्धी अर्थ- दौड़ से ऊबकर आस्थावादी जीवनकी खोज- नीरजा को अच्छे लगने वाले गुण हैं। दोनों मिलकर नीरजा के उस स्वप्न- पुरुष के आदर्श को पूर्ण करने वाले हैं जो उसके स्वप्न में दो मीनारों के रूप में प्रकट होते हैं - `मैं उन दोनों मीनारों के बीच खड़ी थी। मेरे सिर पर चांदनी बरस रही थी। धीरे-धीरे वे दोनों मीनार झुकते हुए मेरे पास आने लगे- बिल्कुल मेरे पार्श्व में आ गये। मैंने देखा, अनुभव किया- वे मीनार नहीं थे। दो मजबूत बाहें थीं।---- विशाल कन्धों वाली। उन बाहों में बंधकर मैं ऊपर उठने लगी। चांदनी में उठती गयी।`[१] उसका यह कथन उसमें निहित जिजिविषा को प्रकट करता है। महीप और अनूप दोनों को समग्र रूप में पाने के लिये उसे सामाजिक संघर्ष करना पड़ता है जिसमें उसे असफलता ही प्राप्त होती है। `अनुभूति की तपस्या`, `भावों का सत्य` और `नयी दृष्टि` जब नीरजा को समाज के स्थापित विश्वासों के समक्ष तोड़कर रख देती है। उसे लगता है जैसे समाज में विवाह नामक संस्था `अन्धों का स्वयंवर है।` वह केदार नाम के एक साधारण नौकरीशुदा व्यक्ति से विवाह कर लेती है और अपने मुक्त जीवन दर्शन को वैवाहिक जीवन की चाहर दीवारी में बन्द कर लेती है। यह नियति उन नारियों की है जो विवाह और दाम्पत्य के परम्परागत बन्धन में बंधकर अपने अस्तित्व को ही समाप्त कर लेने को बाध्य होती हैं। यह एकांकी एक नाट्य-बिम्ब को जन्म देता है- दो

१- मीनार की बाहें- पृ० ६०

मीनारों को छू लेने करने के लिये आकुल- व्याकुल प्राण किन्तु जैसे वे दोनों मीनारें एक साथ छू लेना उन प्राणों की शक्ति के बाहर हो । अनूप और महीप के बीच नीरजा और उसे अपने मार्ग पर चलने को बाध्य करते पाया - ऐसे में नीरजा की अन्धी दौड़ और केदार जैसे समर्पित और हीनता बोध वाले व्यक्ति को पकड़ लेना, इच्छा और यथार्थ के द्वन्द्व को जन्म देता है । इस द्वन्द्व की समाप्ति नीरजा द्वारा केदार से विवाह कर लेने के साथ होती है । लेकिन आन्तरिक तनाव अन्त तक एकांकी के पूरे वातावरण में व्याप्त बना रहता है -

महीप- मैं महीप हूं, नीरू ! दरवाजा क्यों बन्द कर लिया ?
(भीतर से कोई आवाज नहीं आती । दरवाजे पर खड़खड़ाहट और सम्मिलित पुकार होती रहती है । पर भीतर से कार्य प्रत्युत्तर नहीं मिलता है । पुकार थककर एकाएक टूट जाती है । फिर सन्नाटे में उभरती हुई सिसकियां सारी पृष्ठभूमि में फैल फैलकर दूर चली जाती हैं ।[१]

इस एकांकी में रेडियो शिल्प के प्रयोग देखने को मिलते हैं- शान्त वातावरण में उभरती हुई बांसुरी की आवाज, बांसुरी के संगीत का बन्दूक की आवाज के साथ टूटना (एकांकी के `मूड ` को समझाने के लिये ये बड़े ही सजेस्टिव-बिम्ब हैं।), ठहाका और उसके प्रतिरोध का स्वर, बोतल खोल कर गिलास में ढालने की आवाज, पीकर कढ़वी सांस छोडने की आवाज, क्षणिक अन्तराल, कार खोलने, बन्द होने एवं स्टार्ट होने की आवाज आदि ऐसे ही प्रयोग हैं । खण्डहर की कथा एक और नाट्यगत अर्थ को स्पष्ट करनेवाला आयाम है । नीरजा का मानसिक उद्वेलना इस कथा द्वारा प्रतिबिंबित होने लगता है । अन्तराल द्वारा ही यहां समय, स्थान व कार्य की एकता को तोडा गया है । इस प्रकार एकांकी एक क्रमिक समय-अन्तराल की कहानी कहती जाती है । बीच में अनूप और महीप के चरित्र को अधिक स्पष्ट करने की दृष्टि से उनके साथ

१- मीनार की बाहें- पृष्ठ-१११

नीरजा का अलग-अलग सम्वाद अनावश्यक विस्तार लगता है- जबकि पापा और नीरजा के सम्वाद में एकांकी के प्रश्नों का स्पष्टीकरण हो ही जाता है। 'मीनार की बाहें' विवाह और दाम्पत्य सम्बंधों की दुर्भेद्य दीवारों को तोड़ने का एक विफल प्रयास ही सिद्ध होता है लेकिन प्रेक्षक को इस प्रश्न पर चिन्तन करने की जागरूकता भी प्रदान करने वाली है। नीरजा द्वारापूर्ण पुरुष की तलाश गिरीश कर्नाड 'हयवदन' की पद्मिनी का स्मरण दिलाती है।

स्कूल या कालेज के प्रेक्षकों को ध्यान में रख लिखी गयी एकांकी 'हम जागते रहें' एक राष्ट्र भक्त युवक 'श्रीकान्त के प्रयत्नों की ओर लक्ष्य करती है। वह नगर के बहुत बड़े व्यापारी पद्मदास की बहिन शारदा से प्रेम करता है और विवाह भी करना चाहता है। दूसरी ओर वह यह भी जानता है कि पदमदास एक जमाखोर और भ्रष्टाचारी व्यापारी है। पदमदास ऐसे समय, जब देश चीनी आक्रमण के संकट से गुजर रहा है- अपने अखबार द्वारा सेन्सेशन्स व अफवाहों को फैलाकर साधारण जनता को गुमराह करना चाहता है। ऐसे राष्ट्र द्रोही से श्रीकान्त जमकर टक्कर लेता है। पदमदास चाहता है कि श्रीकान्त उसके साथ किये गये अब तक के दुर्व्यवहारों के लिये उससे क्षमा मांगे। अन्यथा शारदा से उसका विवाह नहीं हो सकता। श्रीकान्त राष्ट्र हित में अपने व्यक्तिगत हित को महत्व न देकर इस कठोर शर्त को अस्वीकार कर देता है। उसकी सूझ बूझ से पदमदास का आदमी रामभार्गव कान्फीडेन्शियल सरकारी कागजों सहित पुलिस की हिरासत में आ जाता है। अब कन पदमदास को अपने कार्यों के प्रति पश्चाताप होता है और गांधी जी के चित्र के सामने जैसे वह प्रायश्चित करता है। श्रीकान्त का संकल्प जैसे पदमदास के इस हृदय-परिवर्तन से पूर्ण होता है। इस एकांकी में श्रीकान्त का शारदा के प्रति प्रेम राष्ट्र-सेवा के अर्थ न्यौछावर हो जाना चाहता है। यह बिन्दु ही एकांकी को भव्य ईहा से जोड़ता है। श्रीकान्त के राष्ट्र प्रेम से ओत-प्रोत सम्वाद एकांकी में भाषा द्वारा अतिरिक्त भावुकता भरने का प्रयास है। यह प्रारंभिक लेखन की भावुकता का

परिचायक है । राष्ट्रीय पर्वों पर इस एकांकी को खेला जा सकता है । वस्तुत: र यह एकांकी युद्धकालीन रचनात्मक मानसिकता का परिणाम है ।

संग्रह की छठी एकांकी `रावण` पौराणिक सन्दर्भों को लेकर लिखी गयी एकांकी है । रावण के पास शंकर की महाशक्ति का सम्बल होने के कारण राम को भी पराजित करने का उसमें अपार विश्वास है । राम को शंकर की इस महाशक्ति का बोध है जो उनकी यथार्थ दृष्टि का परिचायक है । राम-भक्त शत्रु की महत्ता को स्वीकार करना नहीं चाहते जो उनमें निहित `अन्धी` भक्ति ह का द्योतक है । एक रोमानी दृष्टि का बोधक है । शत्रु से प्राप्त विश्वास पर ही राम रामेश्वर तीर्थ की संकल्पना को साकार करते हैं और आशुतोष शंकर की अर्चा करते हैं । रावण को प्राप्त शक्ति में अहं है जबकि राम समर्पण भावना से इस अपरा शक्ति को प्राप्त करने का संकल प लेते हैं । राम की सेना के हत-विश्वास को पुनरुज्जीवित करने में राम की यह शक्ति पूजा सहायक होती है । इस एकांकी में राम का चरित्र यथार्थ चिन्तन के धरातल पर खडा है, फलत: वह अधिक सजीव रूप में समक्ष आता है । रावण द्वारा माया सीता को राम के पास ले जाने का प्रसंग रावण के दम्भ और राम की शक्ति के प्रति उसके संकुचित दृष्टिकोण को घोषित करने की दृष्टि से रखा गया है । नाटकीय कार्य की दृष्टि से यह प्रसंग राम के अतिरिक्त अन्य चरित्रों में मानसिक द्विधा उत्पन्न करने के लिये है । सामयिक सन्दर्भ में शक्ति के प्रति श्रद्धा और सम्पू- समर्पण भावना की आवश्यकता का सन्देश यहां दिया गया है । इसके अभाव में शक्ति ध्वंस का कारण बन जाती है । राम का रावण के प्रति किया गया कृत्य विष को अमृत द्वारा समाप्त करने का संकल्प लिये हैं ।

`हंसी की बात` प्रहसनात्मक शैली में लिखा गया एकांकी है । इसमें हास्य के हल्के-फुल्के प्रसंगों द्वारा कार्य व्यापार को आगे बढाया गया है । मंच पर पर्दा उठने पर रामप्रसादमास्टर जी के घर का दरवाजा पीटते हुए दिखायी देते हैं, ज्ञात होता है कि आज जो थोडा सा भी नहीं हंसेगा वह मौत के मुंह में चला जायेगा- इसीलिये

रामप्रसाद मास्टर जी, उनके पुत्र-पुत्री और महाशय जी को हंसाते हैं । यहीं दर्शक का साक्षात्कार मास्टर जी के पुत्र व पुत्री, शिव व सुमन से होता है जो अपने कालेज के लिये एक ड्रामे का रिहर्सल कर रहे हैं । ड्रामा को लेकर पिता व उनकी सन्तानों के मध्य नोक-झोंक होती है । और इस प्रकार एकांकी का कार्य व्यापार आगे बढता है । यहीं ब्रदर और सिस्टर का प्रवेश होता है जो चोरी करते हुए पकडे जाते हैं - बडी सफाई के साथ वे बहाने बनाकर और मास्टर शिव व सुमन को चक्कर देकर भाग जाते हैं और इस प्रकार एकांकी समाप्त होती है । पूरी एकांकी में तीन हास्य प्रसंगों को एक के बाद एक जोडा गया है । मास्टर महाशय आदि को रामप्रसाद द्वारा हंसाना , शिव और सुमन द्वारा ड्रामा की रिहर्सल, ब्रदर व सिस्टर द्वारा मास्टर जी फांसा देकर भाग जाना-ये तीनों प्रसंग परस्पर गुंथे नहीं है प्रत्युत अलग-अलग से लगते हैं । इसीलिये वे किसी हास्य की सृष्टि कर पाने में असफल सिद्ध होते हैं । इसीलिये एकांकी के शीर्षक का औचित्य भी सिद्ध नहीं होती । मास्टर द्वारा अभिनयात्मक स्वर में आधुनिक फैशन पर तुकान्त पंक्तियां बोलना, पुअरवायज फण्ड के लिये चन्दा मांगने आये लडकों के साथ मास्टर जी का वार्तालाप, ब्रदर और सिस्टर का विभिन्न भाव-भंगिमाओं के साथ बात करना आदि हास्य उत्पन्न करने के असफल प्रयत्न हैं । इस एकांकी पर डा० लाल के प्रारम्भिक विकासशील लेखन का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । इसीलिये ~~उन्होंने~~ इस एकांकी में रचनात्मक गठन का अभाव है ।

संग्रह का आठवां एकांकी 'ठण्डी छाया' गतिशील घटनाओं और उसके साथ अनुस्यूत क्रिया-व्यापारों के कारण नाटकीय प्रभाव की दृष्टि से एक सफल एकांकी कहा जा सकता है । यहां आत्म-ग्लानि और आत्म-त्रास में घुटते एक युवक की मन:स्थिति को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है । इसी मन:स्थिति को अन्तर्द्वन्द्व के रूप में उभारने की चेष्टा की गयी है । प्रताप इस एकांकी की संवेदना का केन्द्र बिन्दु है । उसे विश्वास हो गया है कि उसकी पत्नी कमला की अग्नि दुर्घटना में जो मृत्यु हुई है वह वास्तव में दुर्घटना मात्र नहीं प्रत्युत पूर्व नियोजित आत्महत्या थी । इस आत्महत्या

का मूल कारण प्रताप का कान्ति के साथ तथाकथित धर्म बहिन-भाई का रिश्ता था। कमला के दाम्पत्य जीवन के लिये यह असह्य स्थिति थी जिसका हल उसने आत्महत्या के द्वारा निकाल लिया । प्रताप को कमला के मानसिक-ताप का अनुभव अब होता है और वह जान लेता है कि कान्ति ने ठण्डी छाया बनकर प्रताप और कमला के दाम्पत्य की गर्मी को स्वयं में सोख लिया था । यह अनुभव ही प्रताप में पश्चाताप आत्म-ग्लानि और प्रायश्चित की मानसिकता का निर्माण करता है । एकांकी में प्रताप की व्यथा को उचित अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है लेकिन कान्ति इतनी निरीह बनकर समक्ष आती है कि उसे कमिटैड कहने का साहस नहीं होता । नौकर गोली द्वारा उसे घर के बाहर से ही जवाब दे देना, कमला और प्रताप के झगड़े के मध्य कान्ति द्वारा अप्रिय स्थिति टालने का प्रयत्न और अन्तत: प्रताप द्वारा उसे ठण्डी छाया करार कर घर से बाहर कर देने का आदेश- सब मिलकर कान्ति के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने का कारण बनते हैं । कमला से प्रेक्षक का परिचय प्रताप की आंखों के समक्ष आये स्मृति-दृश्यों में होता है । पति द्वारा प्राप्त उपेक्षा जैसे उसके नारीत्व का अपमान है- कान्ति को बरेली तक पहुंचाने के लिए जाते समय कमला प्रताप से बरेली में कान्ति को बैठाकर बिना रात रुके लौट आने की शर्त रखती है । उसकी शर्त और पति के प्रति विश्वास तब टूटता है जब रात को कान्ति का भाई नरेश अकेला ही घर लौट आता है और प्रताप की गाड़ी छूट जाने का समाचार देता है । नारीत्व के गौरव के पद दलित होने की यह चरम सीमा है और यही कमला की मौत का कारण बन जाती है । मृत्यु से पूर्व उसका मातृत्व आत्म-पीडा से गुजरता है- उसे भय लगता है कि उसकी मृत्यु के बाद उसके बच्चे को आनेवाली दूसरी स्त्री(जिसे उसने दूसरी चिड़िया कहकर संकेतित किया है) द्वाराप्रेम नहीं मिल सकेगा- तथापि उसका यह भय उसे उसके `जीवन जंगल में आयी आंधी` में मर जाने के प्रण से रोक नहीं सकता । मरते समय स्टोव से जलकर मरने का उसका बयान भारतीय नारी के उस गौरव की प्रतिष्ठा है जो जीवन के सभी अभिशापों को ग्रहण कर पति के लिये वरदान छोड़ जाती है । एकांकी का काव्यत्व या अभिनय -उष्मा प्रताप के आन्तरिक द्वन्द्व के माध्यम से प्रकट हुई है । यह अन्त में प्रताप के इस कथन में

केन्द्रीभूत हो उठती है -`यह ठण्डी छाया सबकी गरमी अपने में खींचती चलती है। आज इसकी सारी गरमी मैंने इस दीवार में बन्द कर ली। (हंसता है) तुम ?(फिर कड़े स्वर से) गोली। इन्हें तू दरवाजे से---(कान्ति के सिसकने की आवाज उभरती रहती है) बाहर कर दे। जाओ। निकल जाओ यहां से।`[1] इस एकांकी में रेडियो तकनीक के प्रयोग देखने को मिलते हैं। आवाजों द्वारा नाटकीय वातावरण और प्रभाव की सृष्टि, संगीत द्वारा द दृश्य- परिवर्तन की सूचना और इसी से `फलेश -बेक` की योजना, क्षणिक अन्तराल द्वारा नाटकीय द्वन्द्व को अभिव्यक्ति, संगीत और स्वर का फेड-इन और फेड-अप होना ऐसे ही प्रयोग हैं। `ठण्डी छाया` अन्तर्द्वन्द्व के मध्य पश्चाताप और प्रायश्चित की खोज करते मनुष्य की एक गतिशील नाट्याभिव्यक्ति है।

`मोहिनी कथा` सेक्स और विवाह को एक नयी दृष्टि देनेवाली एकांकी है। विवाह केवल वासना पूर्ति का ही नाम नहीं है क्योंकि इससे दाम्पत्य के उस आदर्श को चोट पहुंचती है जिसमें पति-पत्नी विवेक के आधार पर परस्पर एक दूसरे को समर्पण करते हैं। यह समर्पण दाम्पत्य जीवन की आधार भूमि है और इसके लिये शरीर से उठकर धर्म और आदर्श की सीमा तक पहुंचना होता है। पति-पत्नी के बीच एक दूसरे के प्रति सहयोग का बोध जब तक जाग्रत नहीं होता तब तक उनका सम्बन्ध स्थायित्व की गारण्टी प्राप्त नहीं कर सकता। मैनेजिंग डायरेक्टर, त्रिवेणी इलेक्ट्रिकल्स कार्पोरेशन प्रा०लि० कपूरदास ऐसा ही युवक है जिसने अपनी पत्नी मोहिनी को अनुराग तो बहुत दिया किन्तु उसे यह अनुभव नहीं करा पाया कि वैवाहिक जीवन में प्रेम के अतिरिक्त भी कतिपय पारिवारिक धर्म हैं जिनके अभाव में वैवाहिक जीवन अधूरा है। इस एकांगिता के ही कारण मोहिनी को अपने `बहु` रूप का आभास नहीं हो पाया-

----

१- ठण्डी छाया- पृ० २०८

फलत: समय के साथ -साथ वासना पर आधारित कपूर और मोहिनी का वैवाहिक जीवन असफल हो गया । आज जब कपूर सीता नामक युवती से दूसरा विवाह रचाने जा रहा है तो उसके पिता उसके पिछले वैवाहिक जीवन की असफलता से शिक्षा लेकर उसे विवेक और धर्म के प्रति सजग करते हैं ----- उसे तो पता ही न चला कि पति का घर क्या होता है ? ससुराल क्या है ? लड़की की यह व्याहता जिन्दगी क्या है, तुमने उसे जानने का अवसर ही न दिया । तुमने उसे संस्कार च्युत किया । मोहिनी कोई साधारण लड़की नहीं थी जिसे तुमने केवल अपनी वासना में- वह भी उसी की दिल्ली में- बांधना चाहा था । पत्नी केवल `सैक्स` नहीं है ।`[1]

\+ + +

`मनुष्य केवल भूख नहीं है । जैसे तितली केवल पंख नहीं है । तुमने जो चाहा, मोहिनी ने तुम्हें वही दिया । और मोहिनी ने जो चाहा, तुमने भी उसे वही दिया । इसमें विवाह कहां आता है ? धर्म और आदर्श कहां है इसमें ? (रुककर) तुमने उसे इतना अन्ध-समर्पण दिया कि सब कुछ कुरूप हो गया ।[2]

कपूर पिता के इस वस्तु स्थिति दर्शन से अपनी गलतियों का अनुभव करता है और विवाह नामक संस्था को एक व्यापक दृष्टि कैनवास के रूप में पाता है । मोहिनी भी इन्हीं गलतियों का अनुभव करती है और वैवाहिक जीवन की इस असफलता पर पश्चाताप भी करती है-` मैं अपने अहंकार के भंवर में अपने आपसे फंसी हुई उस मछली की तरह हूं जिसकी कोई गति नहीं । दिल्ली का वह अपना खूबसूरत बंगला, कन्वेंण्ट की वह फैशनेबल सर्विस, वह मेरा बैंक- बैलेन्स । और दिल्ली की इतनी सुन्दर जिन्दगी ।- यह भंवर मैंने अपने अहंकार से बनाया । मैं - मैं --।`[3] कपूर और मोहिनीकी परस्पर

१- मोहिनी कथा-पृ० २१६

२- मोहिनी कथा - पृ० २१८

३- मोहिनी कथा- पृ० २३०-२३१

कर्तव्य विमुखता भविष्य में उनके लिये प्रेरणाक का स्त्रोत बन जाती है। एकांकीके इन दोनों चरित्रों में दोष उभयनिष्ठ है। कपूर और मोहिनी अपनी वैवाहिक असफलता हेतु संयुक्त रूप से उत्तरदायी हैं। अतएव प्रो० गंगादास द्वारा कपूर को अनुराग-लता की रक्षा न कर पाने का दोष देना एकांगी दृष्टि है। कहीं-कहीं ऐसा भी प्रतीत होता है कि वे नारी पर पुरुष की महत्ता को लादना भी चाहते हैं और इसे पौरुष की रक्षा हेतु उपाय स्वरूप मानते हैं। कपूर के साथ उनके इस वार्तालाप द्वारा यह होता है - तथ्य को प्रमाणित करता है -

कपूर- सीता इन्तजार करेगी वहां।

गंगादास- इन्तजार करने दो उसे। स्त्री को इन्तजार करना ही चाहिये, तभी वह अपने पुरुष का महत्व समझती है। बैठो तुम। सबक सीखो कुछ भले आदमी। इतने बड़े कन्सर्न को इतनी असफलता से चलाते हो पर एक स्त्री तुम लोगों से नहीं चलती। नादान।[१]

\+ \+ \+

कपूर और मोहिनी दोनों ही स्वयं को दोषी मानते हैं जो उनकी उदारचेता दृष्टि का द्योतक है। इसीलियेएक ओर कपूर यह कहकर अपने दोष स्वीकार करता है कि- तुम तो एक अनुराग-लता थीं जिसकी मुझे रक्षा करनी चाहिये थी। दोषी मैं हूं क्योंकि मैं तुम्हें दिल्ली के चंगुल से नहीं बचा सका। मैंने अपने स्वार्थ वश तुम्हें वहीं रहने दिया। ओह! इतनी स्वतंत्रता! मैंने ही तुम्हें गुमराह किया। मैं दोषी हूं- मैंने तुम्हें पत्नी न समझकर केवल प्रेमिका समझा। मैंने तुम्हारा धर्म नहीं समझा। मैंने तुम्हें केवल `रोमान्स` समझा।[२] दूसरी ओर, मोहिनी भी अपने अहंकार को स्वीकार करके अपनी गलतियों के लिये क्षमा-प्रार्थी होती है। महेन्द्र के साथ अपने प्रस्तावित विवाह के तथाकथित समाचार देकर कपूर की नजरों में स्वयं को गिराने का असफल

१- मोहिनी कथा-पृ० २१४

२- वही- पृ० २२६

प्रयत्न भी करती है । दोनों की उक्त आत्म-स्वीकृतियां यह स्पष्ट करती हैं कि वे इस वर्तमान को अनिच्छित रूप में स्वीकार कर रहे हैं । यही वह बिन्दु है जहां एकांकी की मूल सम्वेदना और उसमें अन्तर्हित तनाव जन्म लेता है और न चाहते हुए भी वे डायवोर्स की ओर बढ़ते हैं- मोहिनी का वकील कपूर और उसके परिवार वालों को `चार्ज` लगाता है और मोहिनी भी कपूर से उस पर `चार्ज` लगाने की प्रार्थना करती है । प्रेम-पत्रों को लेकर उनका भावुक हो उठना उनके परस्पर प्रेम का एक और प्रमाण है । निस्संदेह, ये दोनों चरित्र नियति की क्रूरता के शिकार हुए हैं और पश्चाताप द्वारा भविष्य को निर्दोशित करते हैं । एकांकी में गंगादास सूत्रधार का कार्य करने वाला चरित्र है । महेन्द्र एकांकी में अतिरिक्त पात्र के रूप में समक्ष आता है- केवल मोहिनी के पुनर्विवाह के सन्दर्भ को सन्देहास्पद बनाने के लिये । सीता में वैवाहिक जीवन के आदर्श का स्वप्न संजोया गया है- `सीता` नाम `मोहिनी` नाम को एक आदर्श मूलक सन्दर्भ प्रदान करता है । समग्रत: यह एकांकी आज के तेजी से बदलते नये समाज के नये दु:ख` पर अंगुली रखकर उसे `मूल्य` से जोडने का प्रयत्न करती है ।

संग्रह की आगामी एकांकी `गदर` युद्ध की विभीषिका से मानसिक रूप में ग्रस्त जनता की अपेक्षा और उपेक्षाओं पर ध्यान आकृष्ट कराती है । एकांकी की पृष्ठभूमि में १८५७ के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की असफलता से व्याप्त निराशा है । अंग्रेजों का देश पर आधिपत्य हो चुका है और फरारी सैनिक भाग-भाग कर जंगलों में शर लेते रहे हैं । युद्ध की इस विभीषिका के शिकार एक किसान दंपति भी हुए हैं । नबाव की सेना में इस दंपति के दो युवा पुत्रों दुर्बली और दुक्खी को बलात भर्ती कर उन्हें युद्ध लड़ने को बाध्य किया गया । अपने दोनों पुत्रों को खोकर माता विक्षिप्त इ सी हो गयी है और पिता वीतरागी । माता के मन में शासक मात्र के प्रति विद्रोह है चाहे वह नवाबहो, या फिरंगी या कोई भी और । इसीलिये जंगल में भागकर आये कि सैनिक को किसान द्वारा शरणदिये जाने पर कृषक-पत्नी का विद्रोह जागपड़ता है और वह उस सैनिक को मारने दौड़ती है। वहीं यह जानने पर कि शरण प्राप्त सैनिक नानाराव धधपन्त है - शत्रु -पक्ष के सैनिक को सौंप देने के लिये उतारु हो जाती है । उसे विश्वास है कि

ऐसा करके वह अपने मरे हुए पुत्रों के खून का बदला ले सकेगी । किसान विवेक पूर्वक शत्रु-सैनिक को मारकर नानाराव की रक्षा करता है और इस प्रकार एक सच्चे राष्ट्रहितकारी के रूप में समक्ष आता है । एकांकी में शासक-वर्ग की युद्ध-प्रियता और इस प्रकार राज्य-विस्तार की स्वार्थपरता के नीचे दलित निरीह जनता की वेदना को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है । इसी कारण यहां देश-प्रेम और बलिदान की भावना प्रमुख नहीं है । उस पीड़ा का निदर्शन कराना ही यहां अभीष्ट है जो जनशक्ति की अपेक्षा को समझने के लिये प्रेरित करती है । ये अपेक्षाएं क्या हैं किस तरह से इनकी उपेक्षा कर शासक इन्हें युद्ध की आग में झोंकते रहे हैं, एकांकी में स्थान -स्थान पर अभिव्यक्त हुई है -

`राजा आये----- पठान आये----- मुगल और नवाब आये---- मराठा आये---- अब अंग्रेज आये---- आगे फिर कोई और आयेगा । और हमरे करम मा आग लगी रही।[1]

+ + +

`पता नहीं कितने-कितने लोग इ बन्दूक से मरे होंगे । अरे कहीं राजा -नवाब थोड़े ही मरते हैं । मरते तो हैं वही-----`[2]

+ + +

` बोल किस राजा बाबू- नवाब स ने हमें होश में रहने दिया ? बता किसने हमें अपना समझा ? बोल । हम गदर क्यों नहीं कर सके ? हमें कभी यह बन्दूक और तलवार क्यों नहीं दी गयी ? हमारे ही पूत का नाम दुर्बली और दुक्खी क्यों रखा गया ? बोल, किसने आज तक हमें आदमी समझा ? जो उलटे हम उनके लिये आदमी हों । बोल, जवाब दे मुझे ।[3]

+ + +

एकांकी की संवेदना वहां घनीभूत हो जाती है जहां स्वयं फरारी सैनिक स्वीकार करता है कि `--आज मुझे पहली बार लगा कि जीवन वह नहीं था जिसके लिये मैंने इतनी बड़ी लड़ाई की --- वह तो स्वार्थ था- तभी मैं हारा सभी हारे---सभी----`[4]

+ + +

१- गदर - पृ०२३८
२- वही - पृ०२३९
३- वही - पृ०२५०
४- वही - पृ०२५४.

एकांकी में युद्ध की भयावहता और उसके प्रभावों को साधारण जनता के सन्दर्भ में लक्ष्य किया गया है । इसी कारण एकांकी रचनात्मक धरातल पर एक स्वाभाविक चिन्तन कीसम्भावनाओं को जन्म देती है । संवेदना, बौद्धिक चिन्तन और द्वन्द्व- तीनोंकी समन्वयकारी सृष्टि इस एकांकी का वैशिष्ट्य है ।

संग्रह का अन्तिम एकांकी `वसन्त ऋतु का नाटक` खुले मंच पर एक प्रयोग है । दर्शकों और अभिनेताओं के बीच की दूरी मिटाने के लिये प्रयोग स्तर पर इस एकांकी में प्रयत्न किये गये हैं । युवक और युवती का अन्तत: दर्शकों के मध्य से उठकर मंच पर आना, मंच से दोनों का अपने पिता को भी आवाज देकर बुलाना और एकांकी के सूत्रधार के रूप में एक आदमी की तटस्थ भूमिका मंच के ऐसे प्रयोग हैं जो उसे अनौपचारिक बनाते हैं । कथ्य की दृष्टि से यहां विशेष बात नहीं है । हां, अनौपचारिक मंच प्रयोग के लिये ऐसे अनौपचारिक विषय उपयुक्त हैं । नाटक के भीतर नाटक` को भी यहां लक्ष्य किया जा सकता है- एक आदमी द्वारा अल्फ्रेड पार्क की वसन्त ऋतु का वर्णन करते करते उसी दृश्य का उभरना और इस दृश्य में युवक व युवती के पिता के बीच अपने पुत्र-पुत्री को लेकर विवाह-सम्बन्धों की चर्चा और युवक द्वारा विरोध का नाटक- ऐसे ही अंश हैं । समग्रत: प्रयोगकी दृष्टि से यह एकांकी रंगमंच और रंगशाला के बीच की खाई को पाटने का प्रारंभिक प्रयास है ।

दूसरादरवाजा :

संपूर्ण नाटकों की दिशा में सन् १९६५ के पश्चात एक रचनात्मक मोड देखने को मिलता है । लाल ने इसे आत्म साक्षात्कार के रूप में देखा और इसकी अभिव्यक्ति `सूर्यमुख`,`कलंकी` और `मिस्टर अभिमन्यु` जैसे नाटकों द्वारा हुई । आत्म-साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जीवन के यापन के सम्बंध में जो रचनात्मक कसौटी थी, उसे उन्होंने `करफ्यू` ,`अब्दुल्ला दीवाना` और `व्यक्तिगत` जैसे नाटकों में तैयार की । व्यक्ति

के अन्तर तक पैठकर उसकी आन्तरिक असंगतियां, जीवनकी अपरिहार्य विडम्बनाएं और निराशा की शोध कर उसे रास्ता सुफाना ही डा० लाल के उक्त नाटकों का लक्ष्य बना । यह रास्ता स्वयं लाल द्वारा भी अनुभूत नहीं था किन्तु नये समाज को नयी दिशा देने हेतु यह रास्ता अन्तर्विरोधों से गुजरने और प्रचलित सामाजिक सम्बंधों को तोड़ने की दिशा में एक कदम था । यह मार्ग किस सीमा तक स्वातंत्र्योत्तर व्यक्ति के लिये उचित हो सकता था, यही नाटककार के लिये एक कसौटी थी । सम्पूर्ण नाटकों की यह चिन्तन प्रक्रिया ही एकांकी लेखन में भी कार्य कर रही थी और इसी का परिणाम था १९६६ से १९७५ तक रचे गये एकांकियों का संग्रह `दूसरा दरवाजा`। यह संग्रह सन् १९७५ में लिपि प्रकाशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित और श्री जगदीशचन्द्र माथुर को समर्पित है ।

` ~~दूसरा-दरवाजा~~

`दूसरा दरवाजा` ~~एकन~~ संग्रह की पृष्ठभूमि में लाल की विदेश यात्राओं का प्रभाव भी सन्निहित है । रचनात्मकता और नाट्य शिल्प के स्तर पर लाल को इन यात्राओं ने एक व्यापक दृष्टि प्रदान की । हमारे देश से बाहर महायुद्धोत्तर मानसिकता के परिणाम स्वरूप जो नया नाट्य-रूप एब्सर्ड-नाटकों के रूप में प्रचलित हो रहा था, उसे अपने देश और समाज की परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में रखकर और अपने जीवन दर्शन से सम्पृक्त कर प्रस्तुत करने हेतु डा०लाल ने जो कदम उठाये, `दूसरा-दरवाजा` उसी का परिणाम है ।

`दूसरा दरवाजा` एकांकी संग्रह चिन्तन की दृष्टि से एक मुक्त और अबाध क्षेत्र प्रदान करने वाला है । इसके एकांकी प्रकट में जो अर्थ प्रेक्षक या पाठक के लिये छोड़ते हैं, उससे भी अधिक महत्वपूर्ण वह अर्थ है जो इसके अन्दर छिपा हुआ है । यह छिपा अर्थ उस जलमग्न पहाड़ की तरह है जिसका नौवां हिस्सा पानी के गर्भ में है और एक हिस्सा पानी के बाहर है । एकांकी कार का लक्ष्य इसी नौवें हिस्से को प्रकट करना है । वस्तुत: एकांकी का यह डूबा अंश वर्तमान जीवन की विसंगतियां,

अपरिहार्य विडम्बनाएं , परम्परा एवं मूल्यों के प्रति अनास्था, सर्वग्राही निराशा के इस युग मैंमनुष्य की असहायता, और इन सबके कारण दिग्भ्रान्त मनुष्य की आन्तरिक और बाह्य विद्रूपता ही है । इसी को सामने लाकर वर्तमान मनुष्य को उसके वास्तविक रूप से परिचित कराना है । रंगमंच को उपर्युक्त वर्तमान जीवन सन्दर्भों से जोड़ने पर ही उसको सार्थकता बनी रह सकती है ।

अब तक के नाटककार अपने यहां के जीवन और उससे सम्बंधित प्रश्नों को या तो पुराण-इतिहास के सन्दर्भ में देख चुके हैं अथवा अति-आधुनिकता के सतही जल में य उन प्रश्नों को खोजते फिरे हैं । इससे एक ओर हमें इतिहास दृष्टि तो प्राप्त हुई किन्तु आज की परिस्थितियों में उस दृष्टि का कोई औचित्य नहीं रहा । इतिहास दृष्टि की इस अप्रासंगिकता का कारण अतीत की घटनाओं और चरित्रों को वर्तमान के सन्दर्भों से अछूता रखना था । इसी कारण वह अतीत वर्तमान के लिये कोई मार्ग नहीं सुझा पाया । दूसरी ओर अति-आधुनिकता का हम पर पड़ा प्रभाव केवल पश्चिमी जीवन दर्शन का अन्धानुकरण था जो एब्सर्डिटी या अति-यथार्थ पश्चिमी साहित्यकारों के लिए अनिर्वचनीयऔर अत्यावश्यकता था वही हमारे लिये पश्चिम से प्राप्त फैशन के रूप में ग्राह्य हुआ । डा० लाल ने 'एब्सर्ड' नाटकों की वास्तविक शक्ति को समझा और अपरिहार्य जीवन-बोध और यथार्थ के साक्षात्कार हेतु इस आन्दोलन का उपयोग किया । 'दूसरा दरवाजा' में संग्रहीत एकांकियों में यही दृष्टि निहित है । इसके लिये तदनुकूल शिल्प का प्रयोग भी इस संग्रह में यथा-स्थान हुआ है । पात्रों द्वारा जीवन के सतही तथ्यों को बार-बार उच्चरित करा उनकी निरर्थकता का बोध देना, व्यक्ति के मानस को उसकी समग्रता में आंकना, पात्रों के क्रिया-व्यवहारों में विद्रूपता(जो उनकी मानसिक स्थिति को सार्थक अर्थ देती है), भाषा और भाषेतर नाट्य-स्थितियों के प्रयोग, अटपटे शब्दों द्वारा सार्थक अर्थ-बोध का प्रयास, सम्वादों की निरर्थकता किन्तु लयात्मकता, मनुष्य की विडम्बनाओं को हास्यजनक स्थितियों द्वारा व्यक्त करना, विसंगतियों को खोखली

हास्य स्थितियों में विस्मृत करने का प्रयास, प्रेक्षक को चिन्तनात्मक धरातल प्रदान करने हेतु पात्रों की अजीबोगरीब क्रियाओं का निर्देशन आदि ऐसे बिन्दु हैं जिनसे एकांकियों को वृहत जीवन सन्दर्भों से जोड़ने का प्रयास हुआ है ।

'दूसरादरवाजा' में विसंगत जीवन को विसंगत शिल्प में प्रस्तुत किया गया है किन्तु पश्चिम के निराशावादसे विपरीत इस संग्रह की एकांकियों में सर्वग्राही निराशा के मध्य कहीं न कहीं आशावाद की किरण भी देखने को मिलती है । ऐसे स्थानों पर डा० लाल की भारतीय चिन्तन-मनीषा का संकेत मिलता है और मौलिक जीवन दृष्टि भी ।

संग्रह का प्रथम एकांकी 'केवल तुम और हम' आज के अर्थहीन परिवेश में खरीदी हुई सभ्यता को ओढ़े- जीने वाली पीढ़ी के जीवन की पैरोडी को अभिव्यक्ति देने वाली एकांकी है । वह ऐसी पीढ़ी है जो पथभ्रष्ट है जो अपनी सांस्कृतिक विरासत को तो भूल ही गयी है लेकिन जिस संस्कृति से जुड़ना चाहती है, उसके लिये भी वह 'मिसफिट' है । इस प्रकार पश्चिम की नकल करने के उपरान्त उसके अनुरूप स्वयं को ढालने में असमर्थ है । अपने का त्यागकर दूसरे को पकड़ने की अन्धी दौड़ में भी इस नव-पीढ़ी को कुछ प्राप्त नहीं होता है । इसीलिये आत्म-भय, विश्वासहीनता, हमेशा भागते रहने की विवशता और स्वयं में उत्पन्न शून्य को भरने के लिये अर्थहीन सम्वाद इस पीढ़ी की नियति हैं । हेमा, जया, रीता इत्यादि लड़कियां इसी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती हैं । वे अपने आन्तरिक खोखलेपन को भरने के लिये उदण्डता और मुक्त व्यवहार का सहारा लेती हैं - अपनी अशक्ति को छिपाने के लिये टोनू, टोटू जैसी काल्पनिक स्थितियों में स्वयं को सुरक्षित अनुभव करने का भ्रम उत्पन्न किये रहती हैं । यह कल्पनाजीविता उनमें आत्म-रति उत्पन्न करती है और वे इसी में घिरी पैरासाइट बनकर जीने को अभिशप्त हैं । गुण्डा हरिसिंह एक ऐसा अर्थहीन और वायवीय परिवेश है जिसके सामने या तो ये लड़कियां समर्पित हो जाती हैं और इस परिवेश द्वारा संचालितकहीं भी, किसी भीस्थिति तक पहुंच जाने को तैयार हो

जाती हैं अथवा उसके साथ एक कायरता और एकाकी लडाई लड़ती हैं। जिसमें पराजय ही हाथ लगती है। दोनों ही रूपों में वे अपनी शक्तिहीनता से आत्म साक्षात्कार करती है। इस आत्म-साक्षात्कार की कसौटी है मालती जो स्वयं गुण्डा हरिसिंह बनकर इन लड़कियों के खोखले व्यक्तित्व का पर्दाफाश कर भय और समर्पण की झूठी संस्कृति से बचकर अपने स्वतंत्र-चेता अस्तित्व-बोध की ओर प्रेरित करती है -

जया- बोलो, यह संगीत कैसा है ? यह क्या है धुन ? भारतीय या वेस्टर्न सिम्फनी------- जार्ज हैरिसन---- या अली अकबर ? वह हरीसिंह गुण्डा कौन था? हम या तुम ? या हमारे चारों ओर दमघोंटू, अर्थहीन परिवेश-----जहां हम जैसे एक प्याला काफी पीते हैं----- उसी तरह एक प्याला ब्वाय-फ्रेण्ड।

(पृष्ठभूमि से गिटार का संगीत उठने लगता है।)

जया- जागो-जागो मेरी प्रान सखियों----- हैमा---रीता---जौनू---शशि---मालती---रेखा--- पूनम---चांद--- रेनू---रवी--- मौनू----प्रेमा।

(विंग के दोनों ओर से नाटक के शुरू की वे सारी लड़कियां संगीत की लय पर जर्क करती हुई मंच पर आती हैं। उनके संग धीरे-धीरे हैमा-रीता भी 'जर्क' करने लगती हैं।)

जया- हे हे हे। च चा च चाचा।
वह झूठा थाहरिसिंह
जैसे हमारे टोटू टोनू डेम झूठे थे
सच केवल तुम हो--- तुम---
केवल तुम और हम---

सभी- केवल तुम और हम
केवल तुम और हम------।[1]

१- केवल तुम और हम-पृ० ३८

यह सत्य बोध अन्य शब्दों में सांस्कृतिक बोध है और `स्व` का बोध है ।

एकांकी में ~~वर्ण~~ वर्ण्य विषय की प्रकृति के अनुरूप शैली का प्रयोग किया गया है । जीवन के यथार्थ के चित्रण के लिये और पात्रों के पल्लवग्राही व्यक्तित्व को प्रकट करने हेतु सतही तथ्यों को एकत्र कर व्यक्तित्व का अधूरापन प्रकट किया गया है-

~~कक~~-
रीता- आई एम सारी ।
जया- तुम्हारे होस्टल और कालेज की हवा ही बैकवर्ड है ।
हेमा- अच्छा बताओ, संसार के पांच मशहूर पाप-सिंगर के नाम ।
रीता- सैण्टाना----जार्ज हैरिसन--- ।
हेमा- हट बे साले, जार्ज हैरिसनबीटलसिंगर है ।
जया- अच्छा,तुम बताओ ----।
हेमा- पांच नाम ? सैण्टाना-----एल्विस प्रिसिले--- डान-----पाल मैकार्टनी----।[1]

पात्रों की अर्थहीन जीवनस्थितियों के प्राकट्य के लिये ऊपर से दिखायी देनेवाले अर्थहीन सम्वादों के प्रयोग कतिपय स्थानों पर द्रष्टव्य हैं -

जया- तुम कौन हो ?
हरिसिंह- ओह । तुम कौन हो ?
जया- जो तुम हो ।
हरीसिंह- मगर मैं क्या हूं ?
जया- जो हो तुम ।
हरीसिंह- इतना गुस्सा ।
जया- ~~ल~~ नफरत ।
हेमा- विद्रोह ।
रीता- अस्वीकार ।[2]

१- केवल तुम और हम-पृ० १८
२- वही- पृ० ३४

यहां नफरत, विद्रोह, अस्वीकार एक ही विचारधारा को प्रतिबिम्बित करने वाले तीन शब्द हैं और तीनों मिलकर एक समग्र प्रभाव के वाहक हैं ।

दूसरी ओर गूढ़ सांकेतिक अर्थ एवं बिम्बों के प्रयोग वाले सम्वादों में निहित गतिशील अभिनयात्मकता एकांकी की विडम्बना, प्रश्न सूचकता और नियति को एक साथ व्यक्त करने में सफल हुई है -

मालती (तडफती हुई) मैं उड़ रही हूं--- जमीन की ग्रेविटी से बाहर, चांद की ओर, ऊपर---- और ऊपर । मेरी उंगलियों से फूल झड रहे हैं----कीडे निकल रहे हैं- एक प्याला रोमान्स---- एक प्याला पापम्यूजिक---- एक प्याला व्वाय फ्रेण्ड---- एक प्याला डायवर्शन, विद्रोह-----अमेरिका------ फ्रान्स ।[१]

यहां जमीन की ग्रेविटी से बाहर उडने, उंगलियों से फूल झडने और कीड़े निकलने के पीछे काल्पनिक स्थितियों में जीने की विडम्बना और आत्म विरोधों में विस्मृत होने की अभिशाप ग्रस्तता का संकेत है । ये अंश लेखन में अन्तर्हित आधुनिकता बोध की ओर संकेत हैं । आधुनिकता-बोध के ही कारण ऐसे असंगत सम्वाद प्रयुक्त हुए हैं । जीवन की असंगतियों को कहीं असंगत सम्वादों से ढंकने का प्रयत्न किया जाता रहा है तो कहीं असंगत क्रियाओं का प्रयोग है, कहीं असंगत हास्य का प्रयोग है और कहीं असंगत ध्वनियों का -

रीता- मेरा नाम----किलोपेट्रा-----लाक्कि लाक्कि लाचिक----।
हेमा- माई नेम सालमा----टियूं टियूं टियूं ट्रियूं ।
जया- खासी गर्ल---- ओई कोमोबा---- ओइ कोमोबा ।
(तीनों मुंह से आवाजें निकालती हुई शोर मचाती हैं । दौड़ी हुई मालती आती है ।)[२]

\+ \+ \+

१- केवल तुम और हम-पृ० ३७

२- वही- पृ० १८

हेमा- हाय, तू कहां थी ?

रीता- तेरा वह गुण्डा कहां है ?

मालती- (मजे में) चला गया ।

हेमा- यह कैसे बोल रही है ।

रीता- लगता है, उसके साथ इसने पी है ।

जया- यह सब बनावटी है---- झूठ है ।

मालती- मरिजुआना----चरस---- एल०एस०डी०-----।

(हंसती है । दोनों डरकर भागती हैं । जया उसे पकड़ लेती है।)

जया- बन्द करो यह बकवास ।

रीता- यह होश में नहीं है ।

हेमा- यह पागल हो गयी है । गुण्डे ने इसे---।

जया- मालती---आई नो यू ।

मालती- आई एम किलोपेट्रा, सन्ताना, रेअरअर्थ, प्रीसले, खासी गर्ल---हा हो ।

(झपटती है । दोनों चीखकर टेबुल के नीचे छिप जाती हैं । जया उसे फिर पकड़ती है।)[1]

\+ \+ \+

संग्रह की दूसरी एकांकी `दूसरा दरवाजा` स्वातंत्र्योत्तर युवा पीढ़ी की सवग्रासी निराशा को अर्थ देनेवाली एकांकी है । आज की पढ़ी-लिखी पीढ़ी के समक्ष दो ही विकल्प हैं- या तो नौकरियों के माध्यम से एक सुविधाभोगी जीवन को लेकर आत्म सुरक्षा के साथ समाज के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाय अथवा नौकरशाहीसे मुक्त होकर सामाजिक चुनौतियों को निराशा के मध्य स्वीकार करे । विडम्बना यह है कि प्रथम विकल्प प्राप्त करने के लिये आज प्राथमिक आवश्यकता इस बातकी हो गयी है कि`---- कोई कितना झुक सकता है--- कोई कितना बिक सकता है ।[2] यही नहीं,

---

१- केवल तुम और हम- पृ० ३६-३७

२- दूसरा दरवाजा-पृ० ५२

सुविधा भोगी जीवन के लिये स्वयं को सत्ता का पृष्ठ-पोषक बनाना आवश्यक है। निस्संदेह यह एक ऐसा व्यूह है जहां आदर्श, उच्च शिक्षा और नैतिक अयोग्यताएं हैं और ऐसे लोगों को व्यवस्था अपना अंग नहीं बनाती- उन्हें धक्के खाकर बाहर आना होता है। दूसरा विकल्प अनेक चुनौतियों से भरा है- वह दूसरा दरवाजा है जहां निराशा, विद्रोह और इनसे उत्पन्न हिंसा की राजनीति आह्वान कर रही है। प्रथमविकल्प की ओर बढने पर जब हाथ खाली ही लेकर लौटना पडता है तो सभी आदर्श और योग्यताएं बेमानी प्रतीत होती हैं और तब चारों ओर से निराश युवा-पीढ़ी में विद्रोह जागता है। तब निराशा, विद्रोह और ध्वंस का मुक्त द्वार इस पीढ़ी को बलात् अपनी ओर खींच लेता है- (संग्रह का नामकरण इसी नाम से किये जाने के मूल में भी यही सत्य है।)

पहली युवती- यहां दिन रात, हमेशा नैतिक पतन देखते-देखते एक सर्वग्रासी निराशा हमें अपनी ओर खींचे लिये चली जा रही है--- सुनो--- सुनो--- सुनो आगे की कहानी----- सुनो।

(बायें दरवाजे पर सहसा कुछ तने हुए हाथ दिखायी देते हैं। इन हाथों में ड्रैगर, भाले, बन्दूक, तलवार, लोहे के राड, छुरी आदि सधे हैं। भयभीत मस्त लोगों की नजरें उन तने हुए हाथों से जैसे चिपक जाती हैं। पुरुष के अलावा सभी न चाहते हुए भी उन्हीं के हाथों की ओर खिंचने लगते हैं।[१])

इस दूसरे दरवाजे की ओर बढ़ने की प्राथमिक शर्त है अपने समस्त आदर्शों का त्याग करना। दोनों ही दरवाजे में पर जीवी बनाने के लिये व्यवस्था के महारथी खड़े हुए हैं और अपने अपने ढंग से चक्रव्यूह का निर्माण करते हैं। दोनोंही दरवाजों पर खड़े ये महारथी जानते हैं कि आजकी पीढ़ी में निराशा है, इसनिराशा के कारण डगमगाता

१- दूसरा दरवाजा-पृ० ६६

हुआ आत्म विश्वास और घोर अनास्था है । अतएव, उन्हें किसी भी भांति अपने वश में किया जा सकता है । आज का युवाजन व्यवस्था का अंग बनने के लिये अपने 'स्व ' के विगलन से अधिक उपयुक्त इस व्यवस्था का मुक्त विद्रोह करना समझता है क्योंकि यही उसकी प्रकृति के अधिक अनुकूल है । यह और बात है कि उसके विद्रोह का संचालन भी उसके हाथों न होकर एक समान्तर व्यवस्था के द्वारा होता है जिसके हाथों वह केवल एक साधन है । इस प्रकार न तो व्यवस्था का अंग होकर ही आज के युवक अपना स्वतंत्र अस्तित्व बना सकते हैं और न उससे मुक्त होकर ही । यही आज की युवा-पीढ़ी का अभिशाप है । इस अभिशाप ने उसकी महत्वाकांक्षाओं को धूल-धूसरित कर दिया है, आदर्शों को खोखला कर दिया है । सम्भवत: तभी महात्मागांधी की कहानी 'एक थे गांधी जी' से आगे नहीं बढ़ पाती । गांधी-दर्शन इस पीढ़ी के मानसिक शून्य को भरने का एक साधन मात्र है । इसीलिये एकांकीकार का यह कथन उपयुक्त प्रतीत होता है- 'आप सोचें कुछ और--- और उम्मीद रखें कि कहानी आगे बढ़े । कहानी हर्गिज आगे नहीं बढ़ सकती ।'[१]

+ + +

'आपके जीवन के लक्ष्य हैं नौकरी---- दफतरों में बुड्ढे होने की तनख्वाह---- सारे सवालातों के जवाब रहे हैं ---- अपने अलावा किसी और से मतलब नहीं । सभ भारत के आदर्श नागरिक--- सुधार में विश्वास । भारत संसार के नक्शे में कहां है, यह पता नहीं । उसे टटोलकर ढूंढना चाहते हैं। और जब धक्के दिये जाते हैं ----तो वही ईश्वर याद आता है ।---- फिर भी चाहते हैं कहानी आगे बढ़े । कहानी होना नहीं चाहते----- कहानी सुनना चाहते हैं ।कहानी बढाना नहीं चाहते---बस, कहानी अपने आप बढ़ जाय । कहानी सुनकर मन बहलाना चाहते हैं---- शून्य को भरने के लिये इन्हें कहानी चाहिये।---- पर कहानी आगे क्यों नहीं बढ़ती---यह नहीं पूछते ।'[२]

+ + +

१- दूसरा दरवाजा- पृ० ६४

२- वही- पृ० ६६

`दूसरा दरवाजा` का पुरुष पात्र लाल के अनेक नाटकों की भांति एक तटस्थ अभिनेता, दर्शक, समीक्षक और निर्देशक के रूप में समझा आता है । एकांकी के अन्य पात्रों से असमान उसे इण्टरव्यू देने का एक लम्बा अनुभव है और वह उन सब तिक्त अनुभवों का भोक्ता है जो उसे अपने लम्बे बेरोजगारी के जीवन में हुए हैं । इसीलिये दोनों युवकों और युवतियों पर इण्टरव्यू के अवसर पर होनेवाले प्रहारों (प्रश्नों) से वह पूर्व परिचित है । अपने अनुभवों को वह इन शब्दों में प्रकट करता है- `विज्ञापन- फिर इण्टरव्यू, इण्टरव्यू और इण्टरव्यू के अन्त में ऐसा लगता है, किसी ने पीछे से धक्का देकर बाहर निकाल दिया । देखिये न, यहां गले पर कितने निशान हैं उन हाथों के । घुटने देखिये---- । अक्सर खुजली मच जाती है यहां । खुजलाने में मजा भी आता है । हां, आपको भी आएगा, धीरज रखिये ।`[१] ऐसे कटु अनुभवों ने उसे व्यवस्था के व्यूह को परिचित करा दिया है । इसीलिये वह अब एक तटस्थ दर्शक और समीक्षक के रूप में दोनों दरवाजों के मध्य बैठा है और आकाश -कुसुम बनकर उड़ रही युवा पीढ़ी को यथार्थ बोध कराता है । उसकी विडम्बना यह है कि वह न तो व्यवस्था का अंग बनकर जी सका है और न ही विद्रोह की हिंसात्मक राजनीति का अंग बन सका है । इसीलिये प्राप्त असफलताओं के उपरान्त वह अपनी `आजादी`, `खुशी`, `चाहना`, `मर्जी`, `व्यक्तिगत स्वतंत्रता` का स्वयं बना हुआ है । इस पात्र मेंभी आयनेस्को-दर्शन के अनुसार `अनागत की प्रतीक्षा` लक्ष्य की जा सकती है जिसके लिये वह कृत संकल्प है । इसीलिये वह कहता भी है- `---- पर मुझे भाग्य मेंविश्वास है ।---- एक ज्योतिषी ने लिखकर दिया है - ओवर एज के बावजूद एक दिन आप नौकरी में रख लिये जाएंगे । आपको यकीन हो या ना, उसमें बता रखा है--- जब राहु की दशा खत्म होकर सूर्य अपने घर से निकल कर दाएं वाले घर में प्रवेश करेगा तो एक दिन अचानक ऐसा होगा कि इण्टरव्यू में सारे कैण्डिडेट जबरिजेक्ट कर दिये जायेंगे तो बिना इण्टरव्यू के मैं रख लिया जाऊंगा ।`[२]

\+ \+ \+

१- दूसरा दरवाजा-पृ० ४२

२- वही-पृ० ४६

'------- मैं अब मजे से बाहर जा सकता हूं।--- मगर क्यों जाऊं ? जब तक मेरी इच्छा न हो।---- हो सकता है---- भीतर मेरी ही नियुक्ति हो जाय। मैं अपने विश्वास पै अटल हूं।----।'[१]

\+ + +

जीवनकी विसंगतियों को प्रद्योपित करने के लिये संक्षिप्त संवाद, निरर्थक प्रतीत होने वाले शब्दों को अतिरिक्त बलाघात के साथ प्रयुक्त किया जाना एवं सम्वादों को एक गतिशील कड़ी के रूप में प्रयोग करना- एकांकी को नाट्यानुभूति प्रदान करते हैं। सम्वादों में आदिसे लेकर अन्त तक क्षिप्रता बनी रहती है और अन्तत: उनमें छिपा समग्र अर्थ कार्य-व्यापारों द्वारा अभिव्यक्त होने लगता है। ये कार्य-व्यापार इन सम्वादों के अन्दर छिपी नाट्य-विडम्बना को प्रकट कर देते हैं। अन्त में, दूसरे दरवाजेर्दे- से निकले हाथ के साथ सभी का खिंचे चले जाना (पुरुष को छोड़कर) उनके कथनों की निरर्थकता और विडम्बना प्रकट करता है -

'मुझे नौकरी और भविष्य नहीं, परिवर्तन चाहिये।--- नहीं समझे ? वे लोग भी नहीं समझे - इसे कोई नहीं समझता।'

\+ + +

पहला युवक- कितना गन्दा वक्त आ गया है।
दूसरा युवक- लोगों में कितना पतन हो रहा है।

\+ + +

१- दूसरा दरवाजा-पृ० ६२

आपके जीवन के लक्ष्य हैं नौकरी----- दफ्तरों में बूढ़े होने की तनख्वाह । सारे सवालातों के जवाब रहे हैं ----- अपने अलावा किसी और से मतलब नहीं । सब भारत के आदर्श नागरिक ----- सुधार में विश्वास ।

\+ \+ \+

पात्रों के उक्त आदर्श अन्तत: जब यथार्थ की कसौटी पर कसे जाते हैं तो उनका खोखलापन स्पष्ट हो जाता है और उन्हें अपने आन्तरिक भय, परजीविता और ध्वंसात्मक चरित्र से आत्म-साक्षात्कार होता है । एकांकी का यह अन्त यथार्थ से साक्षात्कार है और इस प्रकार अनुभूत सत्य की एक झांकी है । एक प्रकार से यह अन्त भी नहीं है क्योंकि पुरुष बेंच पर आकर बैठता है और अखबारों को उलटने पढ़ने लग जाता है । मानो उसका विश्वास किसी अच्छे भविष्य की प्रतीक्षा कर रहा है । एकांकी के कार्य व्यापार प्रसार पाते हैं और फिर सिमट जाते हैं। इस प्रकार एकांकी का समूचा कार्य तत्व प्रत्यक्ष में गतिशील दिखने पर भी वहीं की वही ठहरा सिद्ध होता है ।

संग्रह का आगामी एकांकी `फिर बताऊंगी ` दफ्तरों में नौकरी के नाम पर होने वाले एशो-आराम एवं कर्मण्यता का एक खाका प्रस्तुत करती है । अफसर और अधीनस्थों के मध्य औपचारिक सम्बंधोंकी विवशता, दोनों ओर की अपनी-अपनी मजबूरियां जिनके कारण चाहते हुएभी पारस्परिक सौहार्द और आत्मीयता नहीं बनायी रखी जा सकती । फलत: नौकरी-पेशा द्वारा बने सम्बंधों में एक यांत्रिकता होती है जिसे बनाये रखना अफसर और मातहत- दोनों के लिये आवश्यक है । इस यांत्रिकता के अन्दर भी सम्बंधों की स्नेहद्रिता होती है लेकिन जीवन की बंधी-बंधायी शैली मे० में उसका प्रस्फुटन नहीं हो पाता । इसी कारण अफसर और अ बाबुओं के निहित स्वार्थों की टकराहट तो देखने को मिलती है, अफसर को खुश रखने की मजबूर मुद्राएं भी देखने को मिलती हैं किन्तु नि:स्वार्थ प्रेम का जो सम्बंध है वह

अप्रस्फुटित ही बनारह जाता है । स्कांकी में ए० ओ० मालती और बाबुओं के मध्य सम्बंधों का स्क ही पहलू सामने आता है- जब भीउनमें पारस्परिक सौहार्द्र जागता है तब तब उन्हें यह अनुभूति संकुचित कर देती है कि वे दफतर में हैं और उनके मध्य अफसर और बाबू की दूरी है । इस दूरी का ये बाबू फायदा भी उठाना चाहते हैं और ऐसी दफतरी मानसिकता के अधीन होकर वे ए० ओ० मालती के विरुद्ध नारे भी लगाते हैं, उसे बुरा-भला भी कहते हैं । परिणाम यह होता कि मिस मालती के विरुद्ध धीरे-धीरे स्क भ्रान्त प्रभाव वाला वातावरण खड़ा हो जाता है और मिस मालती को अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ता है । हर सरकारी नौकर की स्क सामान्य मानसिकता यह भी होती है कि उसे वर्तमान की तुलना में अतीत प्यारा होता है - यहां भी मालती का अभाव उसके गुणों को बढाकर सामने लाता है । इस अतीत की तुलना में इन बाबुओं का दफतरी जीवन जैसे सलीन पर लटक गया है । इसीलिये उन्हें जब मालूम होता है कि मिस मालती अपने पति को इसी दफतर में ए० ओ०के पद पर लाने को प्रयत्नशील हैं तो उन्हें अपने पुराने दिन लौट आने का स्क सम्बल मिलता है । मालती के `फिर बताऊंगी ` में ही इन बाबुओं की श्वांस जैसे अटकी रह जाती है । इस स्कांकी में दफतरी वातावरण का यथार्थ चित्रण हुआ है और दफतर के बाबुओं की मानसिकता से भी साक्षात्कार कराया गया है । दफतर-समयपर चपरासी का स्टूल पर बैठे उपन्यास पढ़ना, बाबुओं का काम न कर अपने अफसर की बुराई करना, तरह-तरह के खयाली स्कैण्डल रचना, अफसर की चापलूसी कर उसकी दृष्टि में ऊंचा चढ़ने का प्रयास करना, मिस माला के लड़की होने की स्थिति को अपनी हवाई कल्पनाओं के साथ जोड़ना और इस मानसिक टुच्चेपन का प्रदर्शन यथार्थ चित्र हैं । लेकिन इन सबसे अलग इन कार्यकर्ताओं के मन की निश्छलता, आत्मीयता और स्थान -स्थान पर मुखर दीनता स्कांकी में स्कान्त प्रभाव को छोड़ने के कारण बनते हैं । मालती के ए० ओ० होने और फिर उसकी नौकरी छूट जाने- इन दो अन्तरालों में उपर्युक्त दो मानसिकताओं का चित्रणस्वाभाविक बन पड़ा है ।

संग्रह के स्क और स्कांकी `धीरे बहो गंगा ` में वर्क टू रूल हड़ताल को

परिवार-समस्याओं के समाधानार्थ प्रयुक्त किया गया है । फलस्वरूप शिष्ट हास्य की सृष्टि की गयी है । अन्तत: परिवार के स्वामी डिप्टी साहेब द्वाराइस युक्ति को उल्टे परिवार-जन पर थोप देने से एकांकी में दोहरे मनोरंजन का समावेश हुआ है । डिप्टी और श्रीमती के मध्य नोक-झोंक एकांकी को नाट्यानुभूति प्रदान करती है ।

`हाथी घोड़ा चूहा` एकांकी सातवें दशक की चर्चित और पैने व्यंग्य से तीक्ष्ण बनकर प्रस्तुत होने वाली एकांकी है । दशक के उन एकांकियों में से यह एक है जिनमें पशु-प्रतीकों का प्रयोगकिया गया है एवं उन्हीं के अनुसार मनुष्य-व्यवहारों का साम्य दिखाकर पशु और मनुष्य को समान कोटि में रखा गया है । इस प्रकार तीक्ष्ण व्यंग्य को अभिव्यक्ति दी गयी है । गिरीश कर्नाड कृत `हय-वदन` में आधे घोड़े के शरीर वाला मनुष्य अन्तत: पूर्ण घोड़े में परिवर्तित हो जाता है, मोहित-चटर्जी कृत `गिनीपिग` में समाज के दलित वर्ग के मनुष्यों को दमन हेतु प्रयोग-जीवों के रूप में प्रयुक्त किया जाना, मुद्रा राक्षस कृत `तेन्दुआ` में नव-धनाढ्य संस्कृति वालों द्वारा शोषितों को अपनी यंत्रणाओं का शिकार बनाना और अन्तत: उन्हें पशु की तुलना में भी गिरा देना पशु की तुलना में मनुष्य की दयनीय अवस्था का चित्रण करना है । एब्सर्ड नाटककार आयनेस्को कृत `रायनोसिरस` तो मनुष्य के पशु बन जाने की ही प्रक्रिया का वर्णन है । `हाथी घोड़ा चूहा` उसी परम्परा का एकांकी है । यहां नौकरशाही के अन्दर छिपे उस अधिकार-मद के कीटाणुओं को सामने लाना है जो आदिम-वृतियों का ही एक प्रकार से आधुनिकीकरण है । अधिकार का मद जो आदिम मनुष्य के हाथों समूह के अन्य लोगों पर स्वयं के महत्त्व की प्रतिष्ठा का एक साधन था, आज वही आज की परिस्थितियों में आधुनिक जीवन-संक्रमण के रूप में प्रकट होता है । इन आदिम संस्कारों की गतिशील अभिव्यक्ति के अनेक कोण हैं जिन पर दृष्टि देकर एकांकीकार ने जीवन की पैरोडी को अभिव्यक्ति दी है -

पहला अफसर- शी---- आगे तुम्हें बोलना है--- अफसर नम्बर दो ।

दूसरा अफसर- व्हाटनान सैन्स । मैं कभी भी अफसर नम्बर दोनहीं रहा ।

तीसरा अफसर- और देखो न । मुझे तीसरा नम्बर दिया है जबकि गवर्नमैण्ट हायरारकी में मैं सबसे ऊंचे पद पर हूं----- चेयरमैन फूड कार्पोरेशन ।

दूसरा अफसर- बस--- बस---बस----। आगे मत बढ़ना । हां ।

पहला अफसर- सैक्रेट्री, मिनिस्ट्री आफ---। वह ।

दूसरा अफसर- (हंसता है) चेयरमैन । सैक्रेट्री। बैठे रहो कुर्सी पर । इण्डियन एयरलाइन्स का जनरल मैनेजर होना कुछ और ही बात है ।---[१]

+ + +

पहला अफसर- मेरे कानों में फिर टेलिफोन की आवाज । हैलो---हैलो---- हैलो--- रांग नम्बर--- कट-इट---आई हैव नो टाइम---कान्टैक्ट माई पी० ए० पर्सनल--- प्राइवेट असिस्टेंट सैक्रेटरीज ---नानसैन्स ।

(------- क्षण भर बाद पहला अफसर भीतर से टेलीफोन हाथ में उठाये और बात करता हुआ दौड़ा आता है ।----)[२]

+ + +

अधिकार के अति-बोध और आत्म रति के कारण ये अफसर एक प्रकार की आत्म-केन्द्रिता की स्थिति में पहुंच जाते हैं । जहां इन्हें अपने अतिरिक्त और कुछ भी नहीं सूझता- आत्म-प्रशंसा की सीमा तक पहुंच जाते हैं । आज नौकरशाही में यही बीमार-मानसिकता देखने को मिलती है और तीनोंअफसरों को होनेवाली बीमारियां इसी रुग्ण-मानसिकता की प्रतीक हैं । ये अफसर आत्म-विज्ञापन द्वारा अपनी अयोग्यता को छिपाना चाहते हैं और इस म कारण स्वयं को व्यक्तित्व और व्यवहार-दोनों ही स्तरों पर असाधारणबना लेते हैं -

----

१- हाथी घोड़ा चूहा- पृ० ११५

२- वही- पृ० ११७

-----ऐसा है, जब आदमी अपनी अयोग्यता से नौकरी की ऊंचाई पर जा पहुंचता है और जब वहां अपने आपको अयोग्य----- इन काम्पिटेण्ट महसूस करने लगता है तब उसमें तरह-तरह की मानसिक, शारीरिक, स्नायविक बीमारियां शुरू होती हैं- जैसे कोलाइटिस, कांस्टीपेशन, डायरिया, हाइ परटेन्शन ---- इनसोमानिया---- क्रानिक फटिग----- माइग्रेन हैडेक----- नौसिया वोमिटिंग----- डिजीनैस----- नर्वसडरमैटाइटिस------सैक्सुअल इम्पोटैन्स ।[१]

अफसरशाही के चरित्र की साधारणजनता पर होनेवाली प्रतिक्रियाऔर प्रभाव इन्फेक्शन से कम नहीं होता । आज के युग में इसी कुतहा प्रभाव को लक्ष्य किया जा सकता है । कीट भृंग यथावत ये अफसर अपने अधीनों में भी वही बीमार मानसिकता जन्म लेने लगती है - ` ये मरीज हमारी जान लेने आये हैं । ये हमें भी मरीज बना देंगे । हम इन्हें डाट नहीं सकते ----- ये हमें नौकरी से निकलवा देंगे । हम इन्हें समझा नहीं सकते ।--- येइचे समझदार हैं----- ये यहां नर्सिंग होम में आये हैं ---- आराम पाने के लिये---- मगर इनके दिमाग में हर वक्त वही आफिस ----- वही कुर्सी----वही डर---- वही----वही---- वही ।[२] यही प्रभाव शनैः शनैः तद्रूप हो जाने की स्थिति तक पहुंच जाता है । एकांकी में आगन्तुक का चरित्र इस हेतु एक उदाहरण है । आगन्तुक युगकी सर्वग्रासी निराशा का प्रतीक है- वह किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं है क्योंकि वह स्वयं उत्तरदायित्व से विहीन है । ऐसी लक्ष्य-विहीन, अनुत्तरदायी और बेरोजगार पीढ़ी पर नौकरशाही कीकृपा होने पर वह पीढ़ी अपने स्वतंत्र अस्तित्व को खोकर पैरेसाइट बन जाती है । उसमेंभी शासन के चरित्र के अनुरूप आदिम-वृतियों का उदय होने लगता है और वह भी नौकरशाही का अंग बन जीने को विवश हो जाती है । एकांकी के अन्त में आगन्तुक के नौकरी

१- हाथी घोड़ा चूहा- पृ० ११६

२- वही- पृ० १२०

पाने और उन्हीं अफसरों के समान एनीमल-सिम्प्ट्म्स उत्पन्न होने के पीछे इसी विडम्बना को दर्शाया गया है ।-

पहला अफसर- ओह यह बात है । मैं देता हूं इसे नौकरी ।

दूसराअफसर- मैं अभी देता हूं अप्वाइण्टमेण्ट लेटर ।

तीसरा अफसर- यह लो नौकरी ।

(आगन्तुक तीनों कागजों को मुंह में डालकर खाने लगता है ।)

सभी (घबड़ा जाते हैं) यह क्या करता है---- क्या करता है ?

नौकर- बीस साल का भूखा है साहब ।

सभी- यह मर जायेगा--- थूक दे ।

(आगन्तुक में धीरे-धीरे घोड़े, चूहे और हाथी- तीनों के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। सब भागते हैं।)

नौकर- डरिये नहीं------ कोई डर नहीं ।इसे एक साथ तीन नौकरी मिल गयी हैं ।

पहला अफसर- घोड़ा---- घोड़ा ।

दूसरा अफसर- चूहा---- चूहा ।

तीसरा अफसर- हाथी---हाथी ।[१]

हाथी, घोड़ा और चूहा वस्तुत: नौकरशाही में निहित दूसरों पर हावी होकर अधिकार-स्थापन की इच्छा, अवसरवाद एवं अयोग्यता का प्रतीक हैं । ऐसे व्यक्ति जब अधिकार प्राप्त कर लेते हैं तो ये ही पाशविक-वृत्तियां उन पर प्रभाव डालकर उनसे कार्य कराती हैं । ये प्रभाव आनेवाली पीढ़ी को विरासत के रूप में प्राप्त होते हैं । इस प्रकार अक्षम व्यक्तियों द्वारा नियंत्रित समाज की व्यवस्था से आत्म-साक्षात्कार इस एकांकी का लक्ष्य है ।

१- हाथी घोड़ा चूहा- पृ० १३६-१३७

वस्तु और शिल्प -दोनोंस्तरोंपर एकमेव कर ~~अन्योन्~~ अन्योन्याश्रित रूप से प्रकट करने का प्रयासइस एकांकी का एक और लक्ष्य है । जिस रंगमंच से अभिनेता,नाटककार और निर्देशक तीनों एक दो तीन हो गये हैं । - ऐसा रंगमंच बोध इस एकांकी के मूल में है । तीनों के `एक दो तीन` हो जाने की बात से एकांकी के वस्तु-तत्व में निहित सामाजिक चुनौती और उससे उत्पन्न खतरों ~~करने~~ की ओर संकेत किया जाता है । तिस पर इन चुनौतियों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने के लिए दर्शकों और अभिनेताओं के मध्य Alience-effect उत्पन्नकरने की आवश्यकता को भी एकांकीकार ने समझा है । इसीलिये दर्शकों की अलग सत्ता को यहां स्वीकार किया गया है । दर्शकों का आडिटेरियम में शोर मचाना, मंच पर आकर अभिनेताओं से नाटक के लिये तैयार करना और इस प्रकार मंच पर चरित्रों को देखकर दर्शकों द्वारा स्वयं की संज्ञा(Identity) बनाये रखना इस एकांकी के शिल्प को अनौपचारिकता प्रदान करने वाला है । दर्शक अभिनेताओं के कार्यों का मूल्यांकन करते हैं और उन्हें उनके सामयिक अर्थों से जोड़कर उनमें निहित व्यंग्य को संकेतित करते हैं -

`देखिये कुछ भी हो--- यह मजेदार बात है--- पहली बार एक दर्शक--- आडीटोरियम से उठकर सीधे मंच पर आ गया है । वरना यहां आता है सूत्रधार--- नाटककार--- निर्देशक ---- या उद्घाटनकर्ता-----।[१]

+ + +

`दिक्कत यह है कि वे सभी अफसर अभी जिन्दा हैं और उनके घर वाले, नाते-रिश्तेदार आज यहां दर्शकों में मौजूद हैं । जी हां, यही तो है सारी दिक्कत । नाटक वाले हाथ धो बैठेंगे अपनी नौकरियों से । लगता है, सभी खिसक गये हैं(विराम)अब एक ही सूरत है ।अभिनेताओं को सलाह दी जाय, वे बिना नाम के यहां आएंऔर नाटकदिखायें।--`[२]

१- हाथी घोड़ा चूहा- पृ० ११०

२- वही- पृ० १११

दर्शकों को तार्किक स्तर परचरित्रऔर घटना के सम्बंध में सोचने के लिये स्थान-स्थान पर एकांकी के क्रिया-व्यापारों की सिम्फनी को तोड़ा गया है, मध्य में उत्पन्न गतिरोध आडिटोरियम में बैठे दर्शक के लिये घटित क्रिया-व्यापारों पर परस्पर कमेण्ट करने का अवसर प्रदान करता है -

नौकर- राम नाम सत्य है। सत्य बोलो मुक्ति है।

दूसरा अफसर- अबे, डोण्ट गो आउट आफ करैक्टर।

नौकर- अबे मारो गोली करैक्टर को (एक्टर का नाम लेता है) कहां के तुम बडे जनरल मैनेजर। और कहां का मैं नौकर।

दूसरा अफसर- अबे, इक्जिट है यहां ?

नौकरी- सुनो यार, थोडी देर मुझे इस अफसर का रोल करने दो ---।

पहला दर्शक- नहीं, नहीं, अब यह रद्दोबदल नहीं हो सकता।

नौकर- चौप्प। यह हमारा घरेलू मामला है।

पहली आवाज- यार झगड़ा मत करो।

दूसरा अफसर- अच्छा खासा नाटक चल रहा था---कमाल है।

स्त्री स्वर- प्लीज कीप क्वायट।

नौकर- अच्छा बाबा 'इक्जिट'।[१]

नाटकीय लय को इस प्रकार तोड़-तोड़ कर एकांकी को आगे बढ़ाते हुए पारम्परिक नाट्य पद्धति को तोड़ा गया है। एकांकी अपनी प्रम प्रकृति से चिन्तन मनन करने की पर्याप्त संभावनाएं लिये हुए है और कार्य व्यापार की गति को भंग करके प्रेक्षक को अपनी स्थिति से भिन्न करा चरित्रों को तटस्थ दृष्टि से परखने के लिये यह एक उपयुक्त विधि है। ऐसे प्रसंगों में ब्रेख्त की महा नाट्य परंपरा का स्मरण हो आता है। प्रेक्षक और चरित्रों के मध्य यह असम्प्रेषण एकांकी के निहित सत्य की अपेक्षा है। असम्प्रेषण इस प्रकार की एकांकी की एक अनिवार्य स्थिति भी है। इसका कारण है चरित्रों के

१- हाथी घोड़ा चूहा- पृ० १२४

अजीबोगरीब व्यवहार और असाधारण जीवन-दर्शन(हमारे जीवन में मूल्यों के प्रति जो अनाग्रह उत्पन्न हो गया है- उसी का परिणाम है हमारा असाधारण जीवन-दर्शन।) इसे अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली भाषा में इसी कारण एक प्रकार का अटपटापन और बिखराव(फ्रेग्मेण्टेशन) मिलता है।-

पहला अफसर- आई नो बिफोर ट्रूवल एराइजेज़ ।
दूसरा अफसर- आई मीन टू से--- यू नो ।
तीसरा अफसर- दैट्स राइट--- यू सी ।
पहला अफसर- यू नो--- ।
दूसरा अफसर- ओ के--- ओ-- के ।
तीसरा अफसर-यस-यस-- नो--नो ।
पहला अफसर-- नो -- नो--- नो--- यस यस यस ।
तीसरा अफसर- हाउ एवर--- हाउ एवर ।

(यह कहते हुए तीनों पीछे कुर्सियां उठाये हुएघूमने लगते हैं।)

पहला अफसर- हा हा हा हा ।
दूसरा अफसर- हू हू हू हू ।
तीसरा अफसर- ही ही ही ही ।[1]

उपर्युक्त उदाहरण में अफसरों के व्यक्तित्व का खोखलापन बिखराव वाली भाषा से प्रारंभ होकर तदनुरूप क्रिया-व्यापार में बदल जाता है और फिर पशुवत ध्वनियों द्वारा रिप्लेस हो जाता है । यहां भाषा चरित्रोद्घाटन का हेतु बनकर सामने आती है । अन्त में जाकर तो यह भाषा पूर्ण नाटकीय सम्वेदना के साथ यस सर, यस सर में परिवर्तित हो जाती है - ऐसा संकेतित होने लगता है मानोंचरित्रों में निहित

१- हाथी घोड़ापूहा-पृ० १३०

मानवीय मूल्यों की यात्रा एक स्थान पर स्थिरहो गयी हो । यहां भी भाषा निहित मूल्यविहीनता को उजागर करने एवं एकांकी के फैलाव को वृत्ताकार बनाने का कार्य करती है । ये शब्द नाट्यानुभूतियों के सन्दर्भ में सार्थक सिद्ध होते हैं ।

संग्रह का अन्तिम एकांकी `काफी हाउस में इन्तजार` वर्तमान राजनीति में मनुष्य की स्थिति की ओर एक बेबाक दृष्टि है । यहां एक साथ तीन विविध काल आयामों में जी रही पीढ़ियों की मानसिकता का विवेचन है । एकांकी के तीन चरित्र हैं - पहला व्यक्ति, दूसरा व्यक्ति- और सज्जन पुरुष । इनके अतिरिक्त एक लड़की है जिसके आगमन का दूसरे व्यक्ति को इन्तजार है । ये सभी काफी हाउस में एक ऐसे युग के इन्तजार में बैठे हुए हैं जो उनके सामने नहीं है, जो केवल काल्पनिक स्थिति है । काफी हाउस देश की सब अव्यवस्था का प्रतीक है जिसके मध्य ऐसे चिन्तनशील व्यक्तियों की स्थिति है जो या तो अतीत की उपलब्धियों से मोहग्रस्त हैं अथवा भविष्य में होने वाले परिवर्तनों से आश्वस्त होने का भ्रम पाले हुए बैठे हैं । पहले व्यक्ति के चरित्र में (यदि वह है तो) इतिहास या अतीत के प्रति मोह है । अतीत में प्राप्त उपलब्धियों के प्रति विमोह आज की नौकरशाही की मानसिकविडम्बना है । भूत में जीनेवालेख्स नौकरशाही वर्ग को वर्तमान के प्रति वितृष्णा है और अपनी उपलब्धियों को भोगना ही उसका एकमात्र लक्ष्य है । वह कहता भी है- `हमने इतिहास जिया और भोगा है और इतिहास के एक महान म अध्याय की रचना की है । हमने स्वतंत्रता संग्राम----`[१] पहला व्यक्ति उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है जो हर प्रश्न का केवल निष्कर्ष ही खोजती है, जिसे अव्यवस्था की अनुभूति नहीं है प्रत्युत केवल नपुंसक चिन्तन से ही मतलब है । इसीलिये अब वह `इन्कलाब` शब्द का अर्थ भी विस्मृत कर गया है और देश की समस्याओं से असम्पृक्त बनकर जीना चाहता है- `स्वदेशी` और `सत्याग्रह` जैसे शब्दब अपने अर्थ खो चुके हैं ।

१- काफी हाउस में इन्तजार-पृ० १४२

पहले व्यक्ति से सर्वथा विपरीत जीवन दर्शन दूसरे व्यक्ति का है । यह व्यक्ति उस बेरोजगार पथभ्रावत और सर्वग्रासी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है जिसके पास सत्ता नहीं और सत्ता (नौकरी जिसका एक रूप है) प्राप्त करने के लिये यह पीढ़ी नितान्त व्यक्तिगत संघर्ष की मानसिकता में पलती है । सम्भवत: इसीलिये इस पीढ़ी का विश्वास मूलभूत परिवर्तन में है - ऐसा परिवर्तन जो 'नीचे से ऊपर की ओर होगा । इस वर्ग को क्या तो नौकरशाही और क्या राजनीति- दोनों ही से उपेक्षा प्राप्त हुई है । इस पीढ़ी को हमेशा अनुभवहीन कहकर अ उपेक्षित माना जाता रहा है । अनुभवहीनता भी एक प्रकार से राजनीतिक अस्त्र है जिसके द्वारा वर्तमान पीढ़ी को patronise कियाजाता रहा है । जैसे पहले व्यक्ति के पास केवल नपुंसक चिन्तन है, वैसे ही इस दूसरे व्यक्ति के पास केवल नपुंसक ~~निबिव~~ विद्रोह बना रहता है । एकांकी में दूसरे व्यक्ति को किसी लड़की का इन्तजार करते हुए बताया गया है । यह लड़की उस आमूल परिवर्तन अथवा 'इन्कलाब' का प्रतीक है जिसके लिये आज का युवक कृत-संकल्प है- यह बात अलग है कि उस संकल्प की पूर्णता हेतु उसमें कितना नैतिक बल है ? आने वाली लड़की में प्रच्छन्न प्रतीक को एक स्थान पर संकेतित भी किया गया है ।-

पहला व्यक्ति- तुम्हारी उस गर्ल-फ्रेण्ड का नाम क्या है ?
दूसरा व्यक्ति- दिस इज इरिलेवेण्ट !
पहला व्यक्ति- इरिलेवेण्ट क्या है ?
दूसरा व्यक्ति- ओह वण्डर फुल! फिर तो यहां उसके बैठने का इन्तजाम होना ही चाहिये ।[१]

परिवर्तन दोनोंही व्यक्ति चाहते हैं और दोनों ही के परिवर्तन की प्रकृति समस्त अधिकारों का अपने हाथों हस्तान्तरण की इच्छासे प्रेरित है । फलत: उनकी परिवर्तन या इन्कलाब सम्बंधी धारणाएं किसी सर्वहित कारक कारणों से प्रेरित न

१- काफी हाउस में इन्तजार- पृ० १५६

होकर स्व-हित तक केन्द्रित हैं । परिवर्तन के लिये ये दोनों ही पीढ़ियां इच्छुक हैंलेकिन इसके लिये वे प्रयत्नशील नहीं है । वे केवल बातें करती हैं और इस प्रकार शून्य को भरती हैं - `ऐसा मत कहो, बात ही तो हमारा जीवन है । हम या तो व्यस्त रहते हैं या खाली रहते हैं- उसी खाली को भरने के लिये हम यहां आते हैं । इस तरह चुप मत हो । यह खामोशी मुझे घूरती है---बोलो---- कुछ बोलो---- तुम तो बहुत अच्छा बोलते हो ।[१] शून्य को भरने के लिये की जा रही ये बातें `गोदो के इन्तजार` के व्लादी मीर और एस्ट्रागान का स्मरण दिलाती हैं । प्रतीक्षा की वेदना जो `गोदो के इन्तजार` में अनन्त समय तक प्रसरित है, यहां भी देखने को मिलती है ।

एकांकी का तीसराचरित्र सज्जन पुरुष है जो मंच पर नहीं आता किन्तु उसकी हर क्रियासे एकांकी के अन्य चरित्र भी परिचित हैं और वही सभी चरित्र व घटनाओं का नियंत्रक है । एक प्रकार से पहले और दूसरे व्यक्ति की नकेल उसी के हाथ में है । वह भी सत्ता लोलुप है और दोनों व्यक्तियों को भविष्य के सपनों द्वारा विस्मृत कर वर्तमान का भोग कर रहा है । सज्जन पुरुष में राज-सत्ता का चरित्र स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । यह राज्य सत्ता जनता को आनेवाले युगकी खुशहाली के एक मिथकीय आदर्श में भुलाना चाहती है जिससे उसकी सत्ता पर कोई आंच नहीं आये । इसीलिये वह आत्म केन्द्रित होकर जीना चाहती है । सत्ता के लिये अनुशासनहीनता, आन्दोलन एवं विप्लव उसके अस्तित्व को बनाये रखने हेतु शास्त्र हैं ।इससे जनता का मनोबल टूटता है-फलत: सत्ता का स्थायित्व और भी मजबूत होता है । जनता जिसके प्रति विद्रोह करना चाहती है, वह व्यक्ति सज्जन पुरुष है जिसने विद्रोह की सारीशक्ति छीनकर अपने हाथों नियंत्रित कर सकने रखी है । इस नियंत्रण के कारण ही शब्द-

----

१- काफी हाउस में इंतजार- पृ० ४६

`स्वदेशी`, `सत्याग्रह`, `इन्कलाब`- अपने अर्थ खो चुके हैं । एकांकी के अन्त में सज्जन पुरुष से दोनों व्यक्तियों के मिलने की शर्त के पीछे सत्ता के चारों ओर के लौह-कवच की ओर ही संकेत किया गया है । पहले व्यक्ति को डिक्शनरी में से `इन्कलाब` शब्द खोजने के लिये कहा जाता है और दूसरे से निजी सूटपहनने को कहा जाता है । एक ओर जहां `इन्कलाब` शब्द समय के अप्रासंगिक हो गया है और उसे खोज पाना नितान्त असम्भव है वहां मिनी सूट स्वयं को सत्ता के अनुरूप ढालने का शर्त से जुडा हुआ है- यह भी आज कीपीढी के लिये असम्भव है ।

`काफी हाउस में इन्तजार` मेंनिहित विचार तत्व और उससे उत्पन्न द्वन्द्व के रूप को इस प्रकार लक्ष्य किया जा सकता है- यहां द्रष्टव्य है कि जहां पहला व्यक्ति(नौकरशाही) सज्जन पुरुष के प्रति समर्पित है तो दूसरा अव्यवस्था

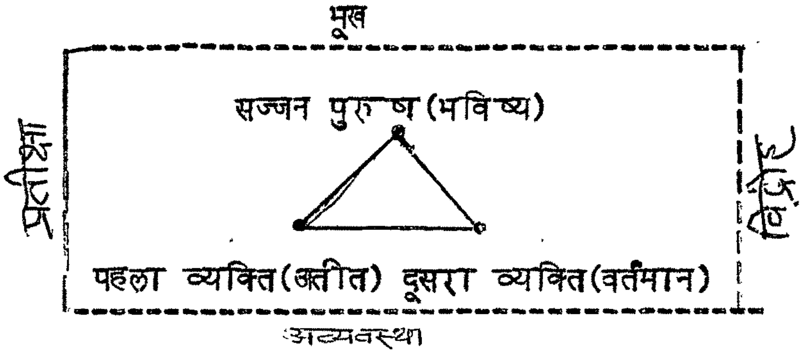

(बेरोगजारी, निराश युवा मानस) उसके प्रतिविद्रोह से भरा हुआ है । एक को विरासत में सत्ता के अनुरूप चिन्तन मिला है तो दूसरे को केवल विद्रोह । इस त्रिकोण सम्बंध के चारों ओर देश की अव्यवस्था, विद्रोह, भूख और अनन्त इन्तजार का नर्तन देखने को मिलता है ।

सज्जन पुरुष के हाथों अपने महत्व स्थापन के अनेक अस्त्र हैं और बेयरा नामक चरित्र उन्हीं में से एक है । यह अधिक स्पष्टचरित्र नहीं है लेकिन दलित, शोषित, अर्थोपजीवी और शक्तिविहीन अनपढ़ जनता के रूप में यह प्रकट होता

दिखायी देता है । जनता की अशिक्षा और बौद्धिक अन्धकार ही वह शून्य है जिसे माध्यम बनाकर देश के अल्पसंख्यक बौद्धिक चिन्तन को उपेक्षित किया जाता है, अथव मृत बना दिया जाता है- `तभी उसने बीच में तुझे खडा कर दिया है |---- बीच में यही शून्य है, लोग यहां पत्थर फेंके--- यहचारों ओर आवाज है, लोग इसमें मारमीट कर अपने गुस्से को जलायें । लोग अपना गूसाउलटी संज्ञा में निकाले--- ऐंटी----ऐंटी----ऐंटी----।`[१] सज्जन पुरुष द्वारा स्वयं को बचाने के लिये यह बेहरा एक उपकरण मात्र है । सज्जन पुरुष की बेयरा के सम्बंध में इस विचारधारा से सत्ता की राजनीति के निजी स्तर का चिन्तन स्पष्ट हो जाता है ।

`काफी हाउस में इन्तजार` शिल्प की दृष्टि से `गोदो के इन्तजार` की मानसिक पृष्ठभूमि क से साम्य रखता है । एस्ट्रा गान और व्लादीमीर के समान ही पहले और दूसरे व्यक्ति को भी प्रतीक्षा है लेकिन यह प्रतीक्षा ही उन्हें बढने नहीं देती- उनकी गति स्थिर हो जाती है और वेएक वृत्त में खडे रह जाते हैं । यह स्थैर्य उनमें विचार और व्यवहार के मध्य असंगति के कारण उन्पन्न हुआ है । पिछले अनेक एकांकियोंकी भांति यहांभी व्यक्तिगत यथार्थ और उससे सम्बंधित विद्रूपताओं को प्रकट करने के लिये पारस्परिक व्यवहारों में बेमेल और अवास्तव क्रियाओं को दर्शाया गया है । पहले और दूसरे व्यक्ति के मध्य पीढियों का अन्तर और उससे उत्पन्न तनाव एकांकी को कार्य व्यापार के स्तर पर भी आन्तरिक तनाव प्रदान करता है । जीवन के तथ्यों को एकत्र करने की अपेक्षा यहां व्यक्ति के मस्तिष्क और क्रियाओं को उसकी समग्रता में पकडने का प्रयास किया गया है । पिछली कतिपय एकांकियों कीतुलना में यहां चरित्र और उनमें मिले छिपे संकेत गूढ़तम नहीं हैं -- सम्वादों में वे प्रकट होते रहे । शब्दों की नाट्यगत सार्थकता इसकाएक कारण हो सकता है ।-`हमारे सामने एक महान उद्देश्य था----कोई----कुछ ऐसाथाजो हर क्षण हमें इन्स्पायर किया रखता था।

+ + +

१- काफी हाउस में इन्तजार-पृ० १५६

' यह परिवेश जैसे एक बहुतबड़ी छिपकली है और यह सारी लकीरों को मुंह से चाटती रही है ।'

\+ + +

' थी---यानि, यह इतिहासकी बात है । और ,इतिहास में क्या नहीं है ?'

\+ + +

'स्वतंत्रता संग्राम वह होता है जोनीचे से लड़ा जाता है--- नीचे से ऊपर तक-----। ऊपर से नीचे नहीं । जिसमें मूलभूत परिवर्तन होता है--- सुधार नहीं- पावर का ट्रान्सफर नहीं । शक्ति की नयी सृष्टि जो आजाद जमीन से पैदा होती है ।'

\+ + +

'सज्जन पुरुष ने कहा है कि यही इंडिसिप्लीन चलने दीजिये । उन्हें यह बहुत प्रिय है । इससे उनका मनोरंजन होता है ।'

\+ + +

'महापुरुष वही जो अपने व्यक्तिगत विश्वास के लिए लाखों करोड़ों आदमी की जान की जरा भी परवाह नहीं करता ।'

\+ + +

'यहां सब कुछ निजीस्तर पर है- ऊपर-नीचे---नीचे ऊपर---जो जिसका विरोध करता है, वह वही होना चाहता है ।'

\+ + +

समसामयिकनाटकों में उपर्युक्त नाट्य-शब्दों में निहित शक्ति और उससे उत्पन्न व्याख्याएं का अपना वैशिष्ट्य है और 'काफी हाउस में इन्तजार' इसदृष्टि से एक उल्लेखनीय एकांकी है ।

~~खेल-नहीं-नाटक-:~~

खेल नहीं नाटक :

`दूसरा दरवाजा` में संकलित एकांकियों में निहित विद्रूप जीवन-दर्शन और उससे आत्म-साक्षात्कार ऐसी कसौटी थी जिस पर समाज और उसमें रहने वाले विभिन्न वर्ग और प्रकृति के मनुष्यों को कसा गया था । साक्षात्कार का यह धरातल मनुष्य के जिस विद्रूप को समक्ष लाया । उसने चिन्तनशील लेखक केस्वर को एक नवीन अभिव्यक्ति का माध्यम प्रदान किया । सम्पूर्ण नाटकों की दिशा में ही नहीं, प्रत्युत लघु नाटकोंके क्षेत्र में भी इस अभिव्यक्ति को `लीला` का नाम दिया गया। `खेल नहीं नाटक` (प्रकाशन १६७८) (प्रथम संस्करण)इसी लीला दर्शन की नाट्याभिव्यक्ति है । इससंग्रह में संकलित एकांकी आपातकाल में रचे गयेऔर कतिपय भूमिगत रूप से खेले भी गये । इनमें निहित सामाजिक और राजनीतिक व्यंगय की तीक्ष्णता और उनका अन्योक्तिपरक अभिव्यक्ति की अपनी शक्ति है । फलत: वे एक भव्य मानवीय ईहा के वाहक बनकर समक्ष आते हैं । यह प्रच्छन्न ईहा उनमें कार्य का जो अन्तर्हित प्रवाह उत्पन्न करता है उससे ऊपर से ये खेल दिखने वाले एकांकी अपनी नाट्य शक्ति का परिचय दे देते हैं । इस सम्बंध में लाल का यह कथन द्रष्टव्य है -`ऊपर से लगता है, ये नाटक खेल हैं पर थोड़ी ही देर बाद अनुभव होगा, नहीं, खेल नहीं, ये कार्य हैं - शुद्ध कर्म जो पुरुषार्थ की अपेक्षा करते हैं `यहां यह ध्यातव्य है कि इन एकांकियों की रचना जितना पुरुषार्थ का कार्य नहीं है उतना यह कि आपातकालीन परिस्थितियों में सत्ता के कार्योंपर अंगुली रखने का साहस करने वाले इन एकांकियों को प्रस्तुत कियाजा चुका है । अभिव्यक्ति का मूल्य चुकाने के लिये कृत संकल्प इन एकांकियों के रचनाकार, अभिनेता, निर्देशकादि-सभी क्रान्तिदर्शी बनकर समक्ष आये हैं ।

लीला या खेल द्वारा अभीष्टविचार तत्व कीअभिव्यक्ति करने वाली एकांकियाँ `देखने` और `जीने` दोनों ही प्रक्रियाओं से गुजरी है । परिस्थितियों

के प्रत्यक्ष भोग, सक्रियदर्शक की मानसिकता से गुजरने के उपरान्त एकांकीकार ने जो समझ प्राप्त की है उसी की अभिव्यक्ति इन एकांकियों में हुई है । चूंकि परिस्थितियों में डा० लाल स्वयं भी अवगाहित हुए हैं, अतएव वे परिस्थितियां उनके लिये कसौटी सिद्ध हुई हैं ।

देखने की लम्बी प्रक्रिया में चिन्तन शील साहित्यकार के रूप में डा०लाल का अनुभव यह रहा है कि जैसे-जैसे मनुष्य प्राप्ति करता जाता है वैसे- वैसे उसकी इच्छाएं बढ़ती चली जाती हैं । इससे लालसा, असन्तोष, मांग, संघर्ष, लड़ाई के युग का प्रारम्भ होता है और सतत हड़पने की सहज पशु प्रवृत्ति का प्रारम्भ होता है । इस हड़पने वाले व्यक्ति को भी विभिन्न वर्गों-शहर का व्यक्ति, गांव का व्यक्ति, गरीब व्यक्ति, अमीर व्यक्ति- में विभाजितकियाजासकता है । प्राप्त करने की अदम्य लालसालिये यह `इण्डिविजुअल` इस प्रकार राजनीति के महातंत्र का निर्माण करता है । इस तंत्र में प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वार्थ सोचता है और इस स्वार्थ पूर्ति के लिये किसीभीसाधन का प्रयोग करने से नहीं हिचकता ।`अखबार` एकांकी के दफ्तरी बाबू उसी महातंत्र के अंग हैं । वे भी स्वार्थी हैं और सतत हड़पना चाहते हैं । व्यक्ति नामक चरित्र की फाइल निकालने के लिये वे अपनी क्षुद्र रिश्वती मनोवृत्ति को प्रकट कर देते हैं । स्वयं व्यक्ति भी इन बाबुओं से अपना काम निकलवाने के लिये उसी रिश्वत के साधन को अपनाता है - फलत: उसी महामंत्र को चलाने वाला एक पुर्जा बन जाता है । दोषी सभी हैं- - वे भी जो दूसरों से कुछ प्राप्त करना चाहते हैं और वेभी जो दूसरों को कुछ देकर अपना काम बनाना चाहते हैं ।फलत: मूल्यावमूल्यन की एक सर्वग्रासी प्रक्रिया चल निकलती है और सभी अपनी अमूल्यित स्थिति को छिपाना चाहते पर भी नहीं छिपा पाते । अखबार जो महातंत्र का प्रतीक है, के पीछे यही मूल्यविहीनता आज का जीवन सत्य है- `अब कहां, कैसे छिपाओगे अपने चेहरे ? ये चेहरे बढ़ते-फूलते चले जा रहे हैं । इन्हें अब तुम किसी भी

भी तरह नहीं छिपा सकते। नहीं, नहीं।----- हम सब एक दूसरे को पहिचान रहे हैं। तुम सब मुझे पहिचान रहे हो। मैं तुम सबको पहिचान रहा हूं। मैं तब तक तुम सबको घूरता हुआ खड़ा रहूंगा जब तक यहां तुम हो। जब तक यहां मैं हूं: यहां सब कुछ करने को है। यहां जो कुछ हुआ है, हमने किया है।[1] पांचों दफ्तरी बाबुओं की मूल्यविहीनता वर्तमान की ही देन नहीं है प्रत्युत उसके पीछे उनके जीवन और केरियर की मूल्यविहीनता छिपी हुई है। 'परिचय' में पृष्ठभूमि से आती हुई आवाजें और इनके द्वारा अनिल और जोशी के साथ किया जा रहा दुर्व्यवहार उसी महातंत्रीय व्यवस्था की ओर संकेत है। इस तंत्र ने अनिल और जोशी जैसी नवीन पीढ़ी को किस प्रकार भ्रान्ति के जंगल में भटकाया है और उसे अपना अंग रूप बनाना चाहा है, इसकी ओर जोशी का यह कथन उल्लेख्य है- 'काश, हम पूरी तरह पागल हो जाते ताकि हम तुम्हें बता पाते- तुम लोगों ने मिलकर हमारे साथ क्या किया है। हमें क्या पढ़ाया है। हमें क्या दिया है। हमारे चेहरों में सूराख करके तुम लोगों ने उसमें क्या-क्या भरना चाहा है? इतने वर्षों में तुममें से हर एक ने अलग-अलग अपनी की चिन्ता की है। अपने से हर दूसरा तुम्हारा दुश्मन है।[2] तंत्र के शिकंजे में आत्म-मुक्ति के लिये छटपटाता हुआ मनुष्य अन्ततः मुक्ति युद्ध में हार जाता है। और आजादी के सपनों की सनक लिये अस्तित्वहीनता और अपरिचय में जीने लगता है अथवा कि जीने को अभिशप्त हो जाता है। 'शहर' में नगर-संस्कृति के प्रतीक राज, दिनेश, सुरेश सब भोग करने का जन्म सिद्ध अधिकार प्राप्त किये हुए हैं। वे शहर के निर्धनक को स्वयं से अलग करके देखते हैं। इस प्रकार समाज में वर्ग-व्यवस्था का चक्र व्यूह बनता है और सब इन्हीं चक्रव्यूहों में घिरे रह जाते हैं। सुरेश जैसे युवक इसी वर्ग व्यूह में बंधे डिक्टेटर शिप की बात करते हैं तो श्रीमती राज समस्याओं के चिन्तन से भी स्वयं को मुक्त कर अधिकाधिक सुविधा भोगी बन जाना चाहती हैं।

1- अखबार- पृ0 20

2- परिचय- पृ0 22

सुरेश जैसे व्यक्ति के लिये यदि प्राप्त बौद्धिकता नये-नये चौंकानेवाले वक्तव्यों को उत्पन्न करने वाला उद्योग है तो श्रीमती राज के लिये वर्ग-विभेद जैसे विषय पर सोचना ही अप्रासंगिक है। इस तंत्र को बदलने के प्रयत्न यहाँ भी हैं लेकिन या तो वे चिन्तन के कोरे धरातल पर हैं या मानसिक अनुन्तुलन के कारण। एकांकी के अन्त में बढ़ती हुई भीड़ के रूप में) ।अर्चना इस 'शहर' की दो वर्गों के मध्य खड़ी मनुष्यता को देखती है और उसे बदलने को संकल्प करती है- यह संकल्प ही वस्तुत: तंत्र में आमूल चूल परिवर्तन करने हेतु पूर्वपीठिका है -

यही लोग बुनियाद हैं तुम्हारे शहर की। इनकी औरतें हमारे घरों के काम करके, हमारे चौके-चूल्हे को चलाती हैं। इनकी बेटियों-बेटों से बढ़ते हुए शहरों की ऊँची-ऊँची इमारतें बनती हैं। यहीं के लोग कल कारखाने चलाते हैं। इन्हीं के कमजोर हाथों और कन्धों पर हमारा पूरा शहर खड़ा है। तभी तुम्हारा यह पूरा शहर कितना कमजोर है। गन्दा है। बीमार है।[1]

+ + +

राज- मत खोलना दरवाजा।हर्गिज नहीं।

(दस्तक तेज होने लगती है।)

अर्चना- पर हम कब तक अपना घर इस भीड़ से बन्द रख सकते हैं।

राज- पर यह हमारा घर है।

अर्चना- वह भीड़ भी हमारी है।[2]

+ + +

अमीर और गरीब के वर्ग-संघर्ष से उत्पन्न महातंत्रीय व्यवस्था का ही विद्रूप हमारी शिक्षा-व्यवस्था में व्याप्त है। यह इस तथ्य का प्रमाण है कि किस

1- शहर- पृ0 42

2- वही- पृ0 48

प्रकार राजनीति ने हमारी शिक्षा, शिक्षक और छात्र- सभी को अपना शिकार बनाया है। इस कारण जो भी शिक्षा आज विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में दी और ली जा रही है- वह सर्वथा अप्रासंगिक बन चुकी है। आज की शिक्षा-व्यवस्था में हर व्यक्ति दूसरे को अपने अधिकार क्षेत्र में बनाये रखना चाहता है। अध्यापक पुस्तकीय आदर्शों को छात्रों पर थोपकर अपनी महत्व-स्वीकृति कराना चाहता है। और छात्र इन अप्रासंगिक आदर्शों को 'फ्रालाइट टूडार्कनेस' कहकर अस्वीकार कर देते हैं। अध्यापक यदि इन आदर्शों का पालन करे तब भी इनकी सार्थकता मानी जा सकती है किन्तु विडम्बना यह कि जहाँ उसके स्वार्थ का प्रश्न उठता है, उसके लिये भी उसी के आदर्श अप्रासंगिक बन जाते हैं। 'अप्रासंगिक' का अध्यापक चरित्र ऐसा ही चरित्र है जो छात्रों को तो बड़ी- बड़ी बातें सिखाना चाहता है (तब भी जब वे उसे सुनना नहीं चाहते) किन्तु अवसर आने पर अपने ही प्रोफेसर कुमार के समक्ष अपने अध्यापकीय मूल्यों की बलि दे देता है। शिक्षा जगत में राजनीतिक हस्तक्षेप और मूल्य मूल्यविहीनता की दारुण स्थिति पर यह एकांकी सटीक व्यंग्य करती है। और यह स्पष्ट करती है कि आज का अध्यापक और छात्र आयातित मूल्यों की गठरी का बोझ सहन नहीं कर पा रहा है। फलत: उसमें समर्पण के विद्रोह और स्वीकार के साथ अस्वीकार देखने को मिलता है। 'एक घंटा' आसन्न मृत्यु के क्षणों में व्यक्ति की शक्ति-बुभुक्षा को तृप्त कर लेने की अदम्य लालसा पर व्यंग्य है और तंत्र में बद्ध मनुष्य को अवसर पाते ही छूट निकलने की इच्छा का उद्घाटन करती है। मृत्यु की पूर्व सूचना मिल जाने के उपरान्त प्राप्त एक घण्टे का उपयोग कैसे किया जायेगा- यह प्रश्न समक्ष आने पर सभी लोग व्यक्तिगत स्तर पर उस एक घण्टे का उपभोग करने की बात सोचने लगते हैं। व्यक्तिगत लिप्साओं की पूर्ति ही यहाँ उसके लिये मुख्य उपभोग्य वस्तु बन जाती है। इसकी प्राप्ति तब हो जाती है जब वस्तुत: मृत्यु सूचक संगीत उभरने लगता है और सभी व्यक्ति युवती को प्राप्त करने के लिये लड़-लड़कर मर जाते हैं। दूसरे शब्दों में उनमें प्रच्छन्न 'इण्डिविड्युअल' जो सतत छपना चाहता है और जो भोक्ता बनकर रहना चाहता है -

प्रकट हो जाता है और जो-सतत वे शक्ति को हस्तगत करने के साथ स्वयं में छिपे महातंत्रीय सिस्टम को सामने ला देते हैं। इस एकांकी का पुरुष पात्र सत्य को देखने वाला दर्शक भी है और उसका मंगल भोक्ता भी किन्तु उसमें उस प्रज्ञा अथवा संकल्प का अभाव है जो उसे अन्य व्यक्तियों से अलग कर सके। इसीलिये युवती के शब्दों में 'जब सब मरेंगे तो क्या तू बचा रहेगा' सुनकर उसमें अपने चिन्तन के थोथेपन की अनुभूति होती है। वर्तमान राजनीति में यह मृत्यु-भय और प्राप्त समय में शक्ति का व्यक्तिगत स्वार्थों के लिये उपयोग की लालसा तब उत्पन्न होती है जब शासक को अपनी सत्ता की नींव हिलने का आभास होता है। तब सत्ता का महत्त्व महल चूर-चूर होने से पूर्व यथाशक्ति उस सत्ता का उपभोग करने की इच्छा शासक वर्ग में जागती है। परिणाम स्वरूप अव्यवस्था जन्म लेती है। ऐसे में जनता का तटस्थ दर्शक बने रहना अपने ही अस्तित्व को चुनौती देना है। यदि सर्वग्रासी निराश राज्य-व्यवस्था के आमूल - परिवर्तन का संकल्प जनता के अन्दर जागृत हो तो यह सत्ता को पुनर्शक्ति प्रदान करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। समकालीन राजनीति में सत्ता के लिये व्यक्तिगत स्तर पर युद्ध करने की राष्ट्र नायकों की प्रकृति और इस बीच जनता की नवोन्मेष शालिनी कल्पना का सुप्त बने रहने की विडम्बना पर यह एकांकी व्यंग्य और प्रेरणा- दोनों प्रदान करने वाली है। समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों की कसौटी पर यह एकांकी अभिव्यक्ति में कितनी प्रतिक्रियावादी रही है- इसका प्रमाण यह है कि आपातकाल में इसे भूमिगत होकर खेले जाने को बाध्य होना पड़ा था। संग्रह का आगामी एकांकी 'नहीं' ऐसा ही एक अन्य प्रयोग है। यह भी आपातकालीन अनुभवों का दस्तावेज है। यहाँ पुरुष चरित्र अन्य सात लोगों को अपने इशारों पर नचा रहा है। ये सातों इस पुरुष द्वारा नियंत्रित बने रहने को अभिशप्त हैं क्योंकि उनकी अपनी स्वार्थलिप्सा इसी पुरुष से जुड़ी है। यह पुरुष अपने हाथों, इन सभी लोगों का 'सत्य' और 'विश्वास' लिये हुए है। फलत: चिन्तन करने की स्वतंत्रता भी इन लोकम लोगों के हाथों से छिनकर इस पुरुष के हाथ आ गयी है। दूसरे शब्दों में भय की राजनीति के बल पर विश्वास देने का भ्रम बनाये रखना ही पुरुष का चरित्र है। राजनीति में ऐसे पुरुष चरित्र की उत्पत्ति

प्रजातंत्रीय मूल्यों के समाप्त हो जाने का संकेत है। ऐसी परिस्थितियों में अन्य सभी केन्द्रीय शक्ति के पाश में जकड़े अभिमन्यु सिद्ध होते हैं। हमारे देश में आजादी के बाद राजनीतिक महत्वाकांक्षा का जो एक युग प्रारंभ हुआ- विगत कुछ वर्षों में उसने सत्ता के विकेन्द्रीकरण और एक व्यक्ति के हाथ शक्ति हस्तांतरण की सीमा तक प्रसार पा लिया था - दूसरों के सत्य और विश्वास को भी एक व्यक्ति जब अपने अधिकार में लेना चाहे तो यह एक प्रकार से व्यक्तिगत चिन्तन के मौलिक अधिकार का हनन ही है। 'नहीं' में राजनीति के उक्त एकाधिकार के अस्वीकार की प्रेरणा प्रदान की गयी है और इसके लिये प्रश्नहीनता और यथास्थितिवाद को तोड़ने की आवश्यकता पर बल दिया गया है -

सातवां- नहीं। यह विश्वास नहीं, भय है। चलो मैं देखता हूं यह हाथ।
(पुरुष का वह हाथ उसे छोटा नहीं कर पाता।)
सातवां- देखा, यह झूठा है। भय से विश्वास बनाना चाहता है।
सब- क्यों ?
पुरुष- तुम लोग कुछ भी कहो, पर मेरे पास इतनी ताकत है कि मैं इस झूठ को सत्य बना दूंगा।
(सारे लोग उसे घेरते हुए एक स्वर में कहते हैं- नहीं।)
पुरुष- हां।
सब- नहीं।
पुरुष- हां।
सब- नहीं।
पुरुष- तुम लोग एक हो गये ?
सातवां- तुम्हारे इस भयंकर खेल का रहस्य हमने जान लिया।
पुरुष- नहीं।
सब- हां।
(सबके बीच में वह पुरुष चुप खड़ा रह जाता है।)[1]

1- नहीं- पृ0 98

'नहीं' में एक राजनीतिक तथ्य यह भी उभर कर समदा आता है कि यहां शासक और शासित का पारस्परिक सम्बंध एक साथ अन्तर्विरोधों के मध्य पलता है। एक ही शासक के प्रति विद्रोह रखने पर भी निहित स्वार्थों के लिये शासित को बाहर से शासक के प्रति सम्मान, आदर और प्रेम का आडम्बर करना पड़ता है। एकांकी छठा व्यक्ति ऐसे ही अन्तर्विरोधी व्यक्तित्व को जीने को बाध्य मनुष्य का द्योतक है। यही राजनीति के महातंत्र की प्रकृति है जिस पर 'नहीं' की 'परेड वाली यांत्रिकता एक तीक्ष्ण व्यंग्य करती है। 'क्रिकेट' के अन्दर निहित व्यंग्य 'एक घण्टा' और 'नहीं' की तुलना में बहुत ही ऋजु है। फलत: यहां नाटककार का सामाजिक दायित्व प्रेक्षकों तक अधिक मुखरता के साथ सम्प्रेषित होता है। दूसरे को अपने अधिकार में रखने की प्रकृति जब व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा और स्वार्थ तक बढ़ जाती है तो नियम और आचार संहिताओं का कोई महत्व नहीं रह जाता। ऐसे में विरोध की प्रकृति भी एक सिस्टम का अंग बन जाती है। आपातकालीन राजनीति में सत्ता के लिये ऐसा ही खेल खेला गया। वे लोग जो स्वतंत्रता के बाद राष्ट्र की बागडोर सम्भाले हुए थे- यह भ्रम ले बैठे कि शासन की सुकुशलता उन्हीं में है- उसका कोई विकल्प नहीं। इस राजनीतिक एकाधिकार का परिणाम यह हुआ कि वह जनता का विश्वास ही खो बैठी। जनता के विश्वास की पुनर्प्राप्ति तो की नहीं जा सकती थी। फलत: विकल्प को भय और दण्ड की राजनीति द्वारा चुपकर और जनता की इच्छा और अभिव्यक्ति को सेन्सरशिप में बांधकर सत्ता लोलुप एकछत्र नेतृत्व का युग प्रारंभ हुआ। अपनी स्वेच्छाचारिता को अनुशासन-पर्व नाम दिलाया गया। लेकिन आन्तरिक विद्रोह के उबाल से उत्पन्न आत्म-भय के कारण जब इन्हीं सत्ता लोलुपों ने जनता को अवसर दिया तो जनता ने अपने प्रजातंत्र-अधिकारों का प्रयोग कर इस सत्ता-राजनीति को उखाड़ फेंका। सत्ता लोलुप राजनीति का क्रिकेट जिसमें कोई केवल बैटिंग, कोई केवल फील्डिंग और कोई केवल मूक दर्शक के खेमे में बंटकर रह गया था- पुन: संयुक्त होने में सफल हुआ। इस खेल में दर्शक का 'देखने और जीने' के बाद 'संकल्प शक्ति' के सफल प्रयोग का तथ्य भारतीय प्रजातंत्र में निहित 'मूल्य' शक्ति का परिचायक है।

खेल प्रतीत होनेवाली किन्तु सामाजिक और राजनीतिक जीवन पर सटीक

व्यंग्य करनेवाली एकांकियों में एक तथ्य समान रूप से दृष्टिगोचर होता है और वह यह कि आज हर व्यक्ति उस जीवन सत्य की खोज कर रहे हैं जो स्वतंत्रता के पश्चात खो गया। इस 'सत्य' की खोज सबकी अलग-अलग ढंग से- सही और गलत साधनों से है। 'अखबार' में दफ्तर के बाबुओं का 'सत्य' उपयुक्त परिवेश और मूल्य के अभाव में खो गया। उनके रक्त में परिवेश द्वारा घोली गयी मूल्यहीनता उनको स्वार्थ और भ्रष्टाचार में भटका रही है। लेकिन वे उस उत्साह, कार्यकुशलता और ईमानदारी को नहीं प्राप्त कर पा रहे हैं जो उनका प्राप्य है। 'परिचय' के अनिल और जोशी को यह सत्य उनके जीवन की बेरोजगारी और निराशा की धुन्ध के कारण दिखायी नहीं देता है। उनके जीवन की निराशा तब और गहरा जाती है जब वे व्यवस्था के जाले में घिरते हिन्दुस्तान को देखते हैं - अंग्रेजों ने सत्ता का त्याग अवश्य किया था किन्तु अपनी शासन नीति को विरासत के रूप में यहां के प्रजातंत्र के शासकों को दे गये। इस अंग्रेजियत शैली की सत्ता को पृष्ठबल देनेवाली नौकरशाही ने शनैः व्यवस्था का ऐसा ज्वाला बुन दिया है कि यहां 'स्व' की कोई पहिचान ही नहीं रह गयी। इस अभाव में आज की पीढ़ी को उसका जीवन सत्य ही नहीं मिल पा रहा है। व्यवस्था के जाल में बुने देश की स्थिति को ही प्रतीकों द्वारा प्रकट कर सामयिक परिस्थिति की विडम्बना को इस प्रकार संकेतित किया गया है।- 'जंगल की कहानी बड़ी दिलचस्प है। हम बहुत सारे लोग थे। हम मिलकर पहले जंगल के सारे हाथियों का सफाया कर देना चाहते थे। हमने बड़ी तेजी से सफाई का काम शुरू किया। पर एक दिन हमने देखा क्या कि हाथी की पीठ पर जंगल का राजा शेर बैठा हुआ है और शेर के ऊपर छाता ताने बकरी खड़ी है। और बकरी के पीछे मकड़ी जाले बुन रही है और मकड़ी के जाले में सारा हिन्दुस्तान ---।[1] जीवन सत्य के अभाव में स्व व परिवेश-दोनों से अपरिचित बने मनुष्य की स्थिति 'शहर में' दर्शायी गयी है अपनी उच्चता के अहं में डूबा एक वर्ग दूसरे शोषित और

1- परिचय- पृ० 27

दलित वर्ग को कभी अपना अंग ही नहीं बना सकता । इसका कारण है कि वह अपने चारों ओर बिखरी समस्याओं का अंग बनना नहीं चाहता,उनमें डूबना नहीं चाहता । 'अप्रासंगिक' में यह खोया हुआ 'सत्य' वही आदर्श है जिसमें युगों से अध्यापक और विद्यार्थी चले आ रहे थे और जो आज की परिस्थितियों के सन्दर्भ में व्यक्तिगत यथार्थ की सीमाओं में रिप्लेस हो गया है - ' अला अपने रास्ते से भटक गया है । बहती हुई चीज अपनी बुनियाद से हटती जा रही है । हम छेद को बड़ा करते जा रहे हैं । इस तरह चुपचाप क्यों हो ? हस्तक्षेप क्यों नहीं करते ? उदास, निराश क्यों हो ?[1] 'एक घण्टा' में शक्ति की प्राप्ति की अन्धी दौड़ में भटके हुए मनुष्य के सत्य की ओर ही संकेत किया है । सभी व्यक्ति-सत्य तक ही सीमित हैं । सत्य का भटकाव मनुष्य को भयभीत कर देता है, इसकी ओर संकेत करता हुआ 'नहीं' का यह कथन द्रष्टव्य है- 'तुम सब भयभीत हो, कोई अपने मालिक से, कोई अपनी ड्यूटी से, कोई अपनी बीबी से, कोई मृत्यु से, कोई ईश्वर से, कोई अपनी जिन्दगी से, कोई भविष्य से, कोई भूत से, तभी तुम्हें कोई एक विश्वास चाहिए । और वह विश्वास मैं दूँगा ।'[2] पुरुष द्वारा दिया जानेवाला यह विश्वास थोपा गया होने से सच्चाई से विलग करने वाला है - 'ताकि हम अपनी सच्चाई न देख सकें ।'[3] 'क्रिकेट' में यह सत्य कप्तान बल्लेबाज की मुट्ठी में समा गया है जिसे प्राप्त करने के लिये समग्र क्रान्ति जैसे संकल्प की आवश्यकता है ।

बाल-नाटक :

वयस्क नाट्य-लेखन की तुलना में बाल-नाट्य-लेखन इसलिये प्रयत्न लक्ष्य कार्य है कि इसके द्वारा मनोरंजन या जीवन की विविध संवेदनाओं को ही अभिव्यक्ति प्राप्त

1- अप्रासंगिक- पृ0 59

2- नहीं- पृ0 97

3- वही- पृ0 97

नहीं होती है प्रत्युत शिक्षा का आयाम भी अनिवार्यतः इसमें अनुस्यूत रहता है। नाटक एक प्रकार से अनौपचारिक शिक्षा का माध्यम है। इसके द्वारा परोक्ष रूप से बालक के मानस में जीवन मूल्यों के प्रति जागृति का ~~सम्यक्~~ कार्य किया जाता है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि बालक का मस्तिष्क कोमल होता है और उसमें सीखने की प्रक्रिया बड़ी क्षिप्र होती है। यह मस्तिष्क यदि किसी रोचक माध्यम को प्राप्त करले ले तो बालक का मानसिक विकास अपेक्षाकृत शीघ्र होता है।

नाटक अभिव्यक्ति की सहज मानवीय वृत्ति को प्रबुद्ध बनाने वाला माध्यम है। नाटक द्वारा मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों का प्रकाशन होता है। बालक में भी एक प्रकार की आन्तरिक ऊर्जा निहित होती है जिसके प्रयोग न आने के कारण वह बालक के अन्दर पुंज-रूप से एकत्र होती जाती है। इसी आन्तरिक ऊर्जा में बालक के संवेगात्मक धरातल का निर्माण होता है। नाटक द्वारा बालक की उक्त ऊर्जा और उससे निर्मित संवेगों की अभिव्यक्ति की अपरिमित सम्भावनाएं हैं। नाटक का माध्यम बालक की आन्तरिक ऊर्जा का अनेक रूपों में उपयोग कर सकता है। नाटकीय गति व लय के निर्माण में, कार्य तत्व के उतार-चढ़ाव के साथ आगे बढ़ने के रूप में और इस प्रकार बालक के संवेगों को एक व्यवस्थित और अनुशासनात्मक अभिव्यक्ति देने में। नाटक द्वारा बालक के मस्तिष्क के क्रिया तन्तुओं को सक्रियता प्राप्त होती जिससे वह शनैः शनैः अपनी शक्तियों से परिचित हो पाने में समर्थ हो सकता है। नाटक का पठन, प्रेक्षण और मंचन बालक में सामुदायिक भावनाओं की भी विवृत्ति करता है। नाटक की कला सामूहिक प्रयत्नों से ही सफल होती है। ऐसे में बालक एक साथ कार्य कर, स्वयं को समूह का अंग बना सामूहिक उत्तरदायित्व का वहन करने के अवसर पाता है। यहीं उसमें सामाजिक -अनुशासन के प्रति भी जागरूकता उत्पन्न होती है।

जैसाकि ऊपर कहा गया है, बालक में एक प्रकार की आन्तरिक ऊर्जा होती

है जो अभिव्यक्ति के अवसरों की खोज करती है। इस ऊर्जा से बालक में अनेक महत्वाकांक्षाओं का जागरण होता है और वह इन्हें साकार करने का इच्छुक होता है। नाटक द्वारा उसकी महत्वाकांक्षाओं व अपेक्षाओं की पूर्ति किस सीमा तक की जा सकती है- यह स्पष्ट करने के लिये बालकों के विभिन्न आयु-वर्गों में परिवर्तनशील अपेक्षाओं पर एक दृष्टि दिया जाना समीचीन होगा।

बाल मनोविज्ञान के अनुसार सीखने और अनुकरण करने की प्रवृत्ति का प्रारम्भ लगभग पाँच वर्ष की आयु से प्रारंभ हो जाता है और चौदह वर्ष तक जाकर यह प्रक्रिया परिपक्व हो जाती है। इस दृष्टि से बालकों के आयु-वर्ग को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है- 5 से 7 वर्ष तक के बालक, 8 से 12 वर्ष तक के बालक और 12 से 14 वर्ष तक के बालक। इन आयु वर्गों के मध्य सीमा रेखाएं खींचना कठिन है क्योंकि असामान्य बालक भी अपवाद स्वरूप मिलते हैं जो या तो समय से पूर्व विकसित हो जाते हैं या समय रहते भी विकसित नहीं हो पाते। उपर्युक्त विभाजन बालक की औसत विकास भूमि को ध्यान में रखकर किया गया है।

5 से 7 वर्ष तक की आयु वर्ग के बालक अपने परिवार की सीमा से उठकर शनै: शनै: समाज के मध्य स्वयं को समायोजित करने की प्रक्रिया का प्रारम्भ करते हैं। सामाजिक वातावरण के साथ स्वयं को समायोजित करने की प्रक्रिया में वे अपनी कक्षा के सह पाठियों के साथ मित्रता स्थापित करते हैं। मैत्री का यह बन्धन उन्हें सामाजिक बनाने के साथ-साथ उन्हें सामाजिक अनुशासन में भी बाँधता है। यह वर्ग वस्तुत: 'आत्म केन्द्रिता(Ego-centric-stage) से 'परिवेश केन्द्रिता (Socio-Centric-stage) और संक्रमित होती हुई मानसिकता का द्योतक है। सीखने की जो सहजात-प्रक्रिया है- उससे आगे बढ़कर इस आयु का बालक किसी भी विचार को त्रिआयामी रूप में देखता है। इसीलिये उसकी कल्पना शक्ति बड़ा ही विशद क्षेत्र में प्रसार पाती है- विशेषकर फंतासी का संसार इस वय के बालक के लिए आकर्षण का विषय होता है।

8 से 12 वर्ष तक की आयु-वर्ग के बालक स्वयं को परिवेश के साथ इस सीमा तक जोड़ चुके होते हैं कि उनमें मानसिक विकास की प्रक्रिया में आनेवाले तनाव शनै: शनै: समाप्त हो जाते हैं। मित्रता का क्षेत्र और भी व्यापक होता जाता है। अब उनकी कल्पना के क्षेत्र में लुभावनी फेन्टास्टिक कथाओं के साथ साहस, रहस्य और भी समाविष्ट होने लगता है।

12 वर्ष से ऊपर की आयु वर्ग के बालक बचपन से किशोरावस्था की ओर संक्रमित होती हुई मानसिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे मानसिक तनाव जो बालक को परिवार से निकल कर समाज के क्षेत्र में आने पर अनुभव होते हैं, वे ही तनाव उसे अब अनुभूत होते हैं। शारीरिक परिवर्तनों के कारण उसमें एक प्रकार का समीक्षात्मक भाव उत्पन्न होता है और वह अतीत की तुलना में अपने वर्तमान के प्रति अधिक 'कान्शस' हो जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे Neither here nor there Stage कहा है।

उपर्युक्त आयु वर्ग के बालकों की अपेक्षाओं को, बालकों के लिये लिखे गये नाटक किस सीमा तक पूरा कर पाते हैं - यही उनके नाट्य-लेखन की कसौटी कही जा सकती है। इसी कसौटी पर कसे जाने के उपरान्त यह भी देखा जा सकता है कि नाटक विशेष किस आयु वर्ग के लिये रचा गया है?

जादू की छड़ी :

'जादू की छड़ी' बालक मन में विश्वास और अविश्वास का द्वन्द्व उत्पन्न कर विश्वास की विजय का आदर्श कराने वाला नाटक है। बालक के संक्रमित मानस में फन्तासी और यथार्थ का जो ऊहापोह पूर्ण द्वन्द्व चलता है, वही इस नाटक में व्यक्त हुआ है। 'जादू की छड़ी' बालकों में इच्छा शक्ति के संवर्द्धन की दिशा प्रशस्त करने वाली एक बाल-नाट्य कृति है। नाटक का यह उद्देश्य इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है- 'यह भी एक कल्पना है। इन्सान में इतनी सम्भावना है छिपी है कि वह

जादू की शक्ति की तरह कुछ भी असंभव -सम्भव कर सकता है ।[1]

+ + +

ताकत के गलत इस्तेमाल से ताकत चली जाती है । अब इसमें ताकत फिर आ गयी।
हाँ, बिल्कुल !

बहन- कहाँ से ?

भाई- कैसे ?

लेखक- तुम दोनों के भीतर जो ताकत छिपी थी न, वही अब इस छड़ी में है । लो---देखो !

बहन- इसमें जादू नहीं ? कहा है ?

भाई- हाँ, कहाँ है ?

बहन- जादू और कुछ नहीं----जादू तुम हो । लो, घुमाओ इसे अपने हाथों । बहन जादू की छड़ी घुमाती है । उसके तमाम साथी चारों ओर से बाजा बजाते गाते हुए आते हैं ।)[2]

+ + +

नाटक के उक्त उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिये इस नाटक की फेन्टास्टिक कहानी की एकतानता को स्थान-स्थान पर तर्क द्वारा तोड़ा गया है । फलत: बालक मन की इस नाटक के सम्बंध में उत्पन्न होनेवाली सम्भावित जिज्ञासाओं का समाधान किया गया है । नाटक के प्रारम्भ में निर्देशक और बालकों के मध्य अनौपचारिक संवाद और फिर नाटक की रिहर्सल को ही प्रेक्षकों के प्रस्तुत किये जाने की बात(जिससे प्रारम्भ से लेकर अन्त तक नाटक में एक प्रकार के अनौपचारिक फार्म केनिर्वाह की सम्भावनाएं उजागर हो जाती हैं) बालकों को नाटक के थीम के सम्बंध में सजग बनाये रख तर्क बुद्धि का प्रयोग की प्रेरणा देता है । बालकों में चिन्तन शक्ति को प्रबुद्ध बनाये रखने के लिये कथा को बीच-बीच में निर्देशक और बच्चों के वार्तालाप द्वारा तोड़ने का प्रयोग उक्त दृष्टि से सार्थक हो सकता है किन्तु इससे मूल्य-कथ्य की सहज

1- जादू की छड़ी- पृ0 52

2- वही- पृ0 64

प्रवाहिता में व्यवधान भी उत्पन्न होता है। बालक को इस व्यवधान के कारण पूर्वापर घटना प्रसंगों से सम्बंध जोड़ने में कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। दो स्तरों- निर्देशक,संजय,गीता और टीचर एवं पुरुष,स्त्री,भाई,बहिन एवं भुतनी- पर चलता नाटक बाल-प्रेक्षक को समझ के स्तर पर कठिन प्रतीत हो, यह सर्वथा स्वाभाविक है। ऐसे प्रयोग डा0 लाल के वयस्क नाटकों में तो सहज ग्राह्य हो सकते हैं, क्योंकि उनके प्रेक्षक बौद्धिक वर्ग है किन्तु 'जादू की छड़ी' जैसे बाल नाटक में नहीं जिसके प्रेक्षक बच्चे हैं। डा0 लाल ने अपनी प्रयोग प्रवृत्ति को बच्चों के लिये रचे गये नाटकों में लाकर उन्हें बाल-मनोविज्ञान के सन्दर्भ में अप्रासंगिक बना दिया है।

निर्देशक व बच्चों के वार्तालाप के बाद 'हंसल और गेथल' पर आधारित इस नाटक नामक परिकथा का प्रारंभ होता है ऐसे भाई-बहिन से जिन्हें माता-पिता ने भुखमरी से बेहाल होकर छोड़ दिया है। ऐसे में भाई-बहिन जंगल में घूमते हुए एक चिड़िया द्वारा अभिशप्त हो भटक जाते हैं। उन्हें मिठाई से बना पहाड़ दिखायी देता है और सहसा एक भुतनी प्रकट होती है। उसके हाथों में एक जादू की छड़ी है जिससे वह दोनों बालकों को अपनी ओर खींचना चाहती है। यहीं इस फान्टासी को तर्क-बुद्धि द्वारा ओवरटेक कर कहानी के प्रवाह को तोड़ा गया है। गीता भुतनी की ओर खिंचने से इन्कार कर देती है क्योंकि वह जादू की छड़ी में निहित जादू के सम्बंध में विश्वास -विश्वास के मध्य झूल रही होती है। यह एक सहज बाल-मनोवृत्ति है और इसी हेतु गीता के तर्क को समक्ष लाया गया है। बच्चे तर्क द्वारा सच्चाई के प्रति आश्वस्त होना चाहते हैं और अपनी स्वतंत्र कल्पना-शक्ति द्वारा अविश्वास में भी विश्वास का सर्जन करते हैं। बच्चों को संसार में स्वतंत्र कल्पना ~~करना~~- द्वारा सत्य की खोज करना ही जीवन की प्रक्रिया है। कल्पना विस्तृत होकर सत्य को स्पष्ट करती है। निर्देशक के ये शब्द इसी तथ्य के प्रमाण है - 'वह कल्पना करने लगी है उसके बारे में। हाँ, बिल्कुल---सारी बात कल्पना और विश्वास की ही तो है।--- खुद की कल्पना---और खुद का विश्वास।-----वह सबसे छिपकर जादू की छड़ी

का रहस्य जानना चाहती है। कल्पना से रहस्य-ज्ञान।-----तो मैं भी उससे दूर हट जाता हूं। हम सब भी उससे छिपकर जरा देखें। हां, छिपकर---उससे दूर रहकर---ताकि वह अपनी कल्पना में स्वतंत्र हो जाय।---स्वतंत्र और मुक्त----।[1] कल्पना करने की स्वतंत्रता बच्चों की संवेदन शक्ति पर आधारित होती है। जितनी संवेदना बच्चे नाटक की कथा से प्राप्त करेंगे उसी के अनुपात में उनकी कल्पना व्यापक होगी। कल्पना की व्यापकता में अलौकिक और अतिप्राकृत-चरित्र व घटनाएं भी विश्वसनीय लगने लगती हैं। बाल-मन की इस संपूर्ण प्रक्रिया को इस प्रकार लक्ष्य किया जा सकता है - बच्चों की सम्वेदना---→नाटक में उसका समावेश------→कल्पना की व्यापकता व क्रियाशीलता---→ घटना व चरित्रों की विश्वसनीयता।

प्रस्तुत नाटक में भी बच्चों की संवेदनशीलता की प्रकृति का ध्यान रखकर कथा को कल्पना के लिये व्यापक क्षेत्र प्रदान किया गया है। इस कल्पना में बच्चे किस तरह स्वयं को इन्वाल्व करें- इसके लिये कहानी को तर्क द्वारा तोड़ा गया है। दूसरा दृश्य कल्पना में विश्वास और उससे अपनी कल्पना को विस्तृत क्षेत्र प्राप्त करने की प्रक्रिया का परिणाम है। गीता जादू की छड़ी को तोड़ने का प्रयत्न करती है तो सहसा उसकी आन्तरिक कल्पना अपना क्षेत्र विस्तार करने लगती है। फलस्वरूप जादू की छड़ी में से राक्षस प्रकट होता है। राक्षस का प्राकट्य और उसका गीता को खाने के लिये झपटना-ऐसे कार्य हैं जो नाटक को लय, संगीत व गति प्रदान करते हैं। गीता राक्षस को एक के बाद एक कार्य बताती जाती है लेकिन राक्षस उन कार्यों को बिनादेरी शीघ्र ही कर देता है। राक्षस के ये कार्य बच्चों को शिक्षा व मूल्य-बोध कराने के माध्यम भी हैं। उदाहरणार्थ -

गीता- महात्मा बुद्ध कौन थे ?
राक्षस- कपिलवस्तु के राजकुमार, बौद्ध-धर्म के प्रवर्तक।

1- जादू की छड़ी- पृ0 18-19

संजय- वैदिक काल किसे कहते हैं ?

राक्षस- जिस काल में वेद लिखे गये । खासकर ऋग्वेद काल को वैदिक काल कहते हैं ।

गीता- अकबर के दरबार में कौन कौन थे ?

राक्षस- नवरत्न----वीरबल, टोडरमल----।

संजय- ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बारे में बताओ ।

राक्षस- यह अंग्रेज व्यापारियों की कम्पनी थी, 1857 में इसका खात्मा हुआ---।[1]

~~की~~ धीरे-धीरे गीता व संजय राक्षस को ऐसा कार्य सौंपने ~~तक~~ का विचार कर लेते हैं जिसे वह करते-करते मर जाय । वे उसे गोलाई में चक्कर लगाने का आदेश देते हैं । बेचारा राक्षस दौड़ते-दौड़ते प्यास से व्याकुल हो उठता है । ऐसे में गीता की उसके प्रति सहानुभूति और दया उमड़ पड़ती है । संजय की निर्दयता की तुलना में गीता की सहानुभूति ~~दर्शक~~ दर्शाकर नाटककार बालकों को निश्छल प्रेम के मानवीय मूल्य का बोध कराता प्रतीत होता है ।

तीसरे दृश्य में राक्षस के बचाव के प्रसंग को लेकर संजय और गीता के बीच की नोक-झोंक, का मनोरंजन वर्णन है । संजय राक्षस को मरने देना चाहता है जबकि गीता अपनी बाल-सुलभ सहानुभूति के कारण उसे बचानाचाहती है । उसका प्रेम और सहानुभूति भरा स्पर्श राक्षस को राजकुमार बना देता है । नाटक में यह 'कार्य' नाटक में प्रच्छन्न उद्देश्य को स्पष्ट करने का एक महत्वपूर्ण आयाम है । प्रेम व स्नेह भरे विश्वास ~~के~~- के बल पर असुन्दर को सुन्दर और दुर्गुणी को गुणी के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है । अभिनय के क्षेत्र में यह एक प्रकार के त्रिकोण-सम्प्रेषण को उत्पन्न करता है जिसे इस प्रकार देखा जा सकता है-

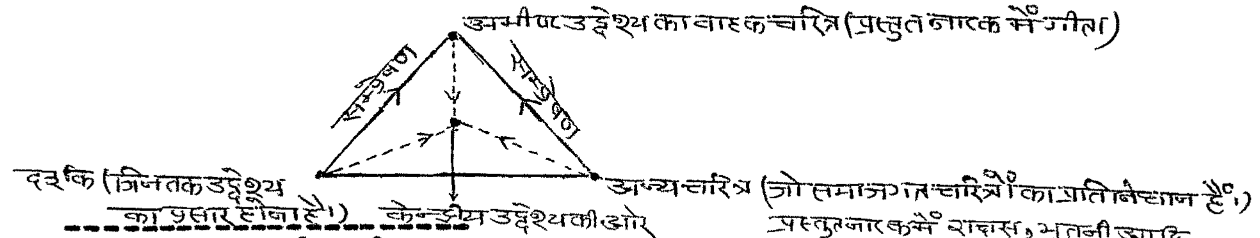

1- जादू की छड़ी- पृ0 27

चौथे दृश्य में नाटक की कथा को आगे बढ़ाने के लिये प्रस्तुत पात्रों के समक्ष एक समस्या आ खड़ी होती है- बिना राक्षस के कहानी आगे कैसे बढ़े ? राक्षस के स्थान पर उत्पन्न हुआ राजकुमार कहानी के बच्चों की रक्षा भुतनी से करता है। फलत: परी कथा के सन्दर्भ ही बदल जाते हैं। यह स्थिति पुन: तर्क को विस्तार देती है। क्या किसी भी कहानी में विरोधी चरित्र या घटना होना आवश्यक है ? लेखक ~~सरल~~ द्वारा इस समस्या का समाधान इस प्रकार किया गया है- 'सोचने की ही तो बात है। मनुष्यों के अवगुणों, दोषों को एक में जोड़कर राक्षस बनाया जाता है ताकि मनुष्य इससे अपनी तुलना करके, इससे ~~बढ़~~ लड़कर इन्सान बना रहे।[1] जादू की छड़ी के सम्बंध में लेखक का विचार है-'यह भी एक कल्पना है- इन्सान में इतनी सम्भावना छिपी है कि वह जादू की शक्ति की तरह 'कुछ भी असम्भव सम्भव कर सकता है।[2] यहां नाटककार ने लेखक की सीमाओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। उसका सर्जन समाज सापेक्ष होता है। 'जबतक समाज में लोगों के भीतर राक्षस-भूत-भुतनी हैं, तब तक मुझे राक्षस और भुतनी को इसी तरह बनाये रखना पड़ेगा।[3] यह लेखक की मजबूरी है। यहां बच्चों में निहित उस शक्ति या सम्भावना की ओर संकेत है जिसके द्वारा वे समाज में व्याप्त बुराइयों को भी अच्छाई में परिणत कर सकते हैं। इस सम्भावना की ओर प्रेरणा देते हुए नाटककार किसी भी रचना में चरित्र विस्तार में सहजता की ओर संकेत देता है। 'बनना' नहीं 'होना', नैसर्गिक रूप में घटना व चरित्रों का बढ़ना, यही नाटक को जीवन से जोड़ने की सही प्रक्रिया है।

पांचवा दृश्य भुतनी और लकड़हारे के दोनों बच्चों के संघर्ष की कहानी है। एक बार फिर निर्देशक, लेखक और संजय-गीता के तर्कपूर्ण चिन्तन परी कथा के गतिशील

1- जादू की छड़ी- पृ0 52

2- वही- पृ0 52

3- वही - पृ0 53

कार्य-तत्व में परिणत हो जाते हैं। भाई उस चिड़िया को अमरी कर देता है जिसमें भुतनी के प्राण सुरक्षित हैं। पुन: बहिन के हृदय में घायल भुतनी के प्रति सहानुभूति उमड़ पड़ती है। राक्षस से परिवर्तित हो बना राजकुमार की आँखों से दया के आँसू भुतनी पर गिरते हैं और वह सुन्दर राजकुमारी में बदल जाती है। प्रेम व दया की साक्षातमूर्ति ये बच्चे ही शक्तिवान हैं जो अपनी शक्ति के सही इस्तेमाल से संसार की बुराई को भी अच्छाई में बदल सकते हैं। इसी सन्देश के साथ राजकुमार व राजकुमारी का विवाह होता है और नाटक समाप्त होता है।

प्रस्तुत नाटक बच्चों के लिये रचा गया है। लेकिन एक साथ अनेक समस्याओं निर्देशन, सम्प्रेषण और लेखन- को नाटक की कथा के मध्य पिरोकर नाटककार ने अपने वयस्क नाट्य-चिन्तन को अनुपयुक्त स्थान पर आरोपित करने की भूल भी की है। तिस पर एक साथ परी कथा और रिहर्सल-प्रसंग को एक दूसरे में मिलाकर प्रस्तुत करने का जो प्रयास(प्रयोग) किया गया है- उससे नाटक बच्चों के बोध के स्तर पर प्रयत्न ग्राह्य बन जाता है। इन विविध चिन्तन आयामों को विवेचित करने में नाटककार यह भूल जाता है कि उसका यह नाट्य-सर्जन 8 से 12 वर्ष तक के आयु वर्ग के बालकों के लिये है। ये बालक अभी सीधी बात समझनेके अभ्यस्त हैं -अन्योक्तिपरक उद्देश्य उनकी बुद्धि को देर से स्पर्श करता है।

समग्रत: यह नाटक बालकों द्वारा बालकों के लिये जिन उद्देश्यों को लेकर रचा गया है, वे निम्नांकित तीन बिन्दुओं में विस्तार को प्राप्त हुए हैं -

1) बच्चों की कल्पना व चिन्तन ~~क~~ के क्षेत्र को विस्तार प्रदान करना।

2) बच्चों के लिये इस नाटक को शिक्षा का माध्यम बनाना।

3) परी-कथा द्वारा बच्चों को मनोरंजन कीसामग्री प्रदान करना।

उपर्युक्त तीनों उद्देश्यों में प्रथम दो कल्पना-विस्तार(जो फन्टेस्टिक कथा के रूप में प्रकट होती है) और शिक्षा(जिसे नाटक में दया व सहानुभूतिपूर्ण स्पर्श पाकर

राक्षस व भुतनी के क्रमश: राजकुमार व राजकुमारी के रूप में बदलने के रूप में दिखाया गया है) अनुपात की दृष्टि से अनुपयुक्त ठहरते हैं। नाटक में कल्पना-विस्तार और चिन्तन का फैलाव इतना अधिक है कि उससे प्राप्त होने वाली शिक्षा गौण प्रतीत होने लगती है। गीता और राजकुमार को राक्षस व भुतनी के प्रति अचानक ही सहानुभूति थोपी सी प्रतीत होती है। उक्त दो उद्देश्यों के अतिरिक्त जो तीसरा उद्देश्य बच्चों को मनोरंजन की सामग्री प्रदान करना- है, वह वस्तुत: नाटक को बच्चों की दृष्टि से रोचक और अभिमय अभिनय की दृष्टि से गति व लय युक्त बनाता है, भाई-बहिन को को जंगल में मिठाई का पहाड़ दिखायी देना, अचानक भुतनी का प्रकट होना और जादू की छड़ी को हिलाना (प्रथम दृश्य), गीता द्वारा जादू की छड़ी को पटककर तोड़ने के प्रयास में प्रथम चारों ओर संगीत व आवाजें सुनायी देना और इस रहस्यमय वातावरण में राक्षस का प्रकट होना, राक्षस का 'खाऊं खाऊं,' कर दौड़ना और गीता क व संजय द्वारा उसे कार्य-व्यस्त करने की अनेक युक्तियाँ (दूसरा दृश्य), चिड़िया को घायल करने के साथ भुतनी के घायल होते जाने का दृश्य और अन्तत: राजकुमार-राजकुमारी का विवाह ऐसे ही मनोरंजक एवं रोचक प्रसंग हैं। प= फन्टासी में सेन्सेशन्स का विशेष स्थान है और इस नाटक में जादू की छड़ी को पीटने से प्रकट हुए राक्षस एवं भुतनी आदि प्रसंग ऐसे ही सेंसेशन्स प्रदान करने वाले हैं। इन्हें उत्पन्न करने में प्रकाश एवं ध्वनियों के प्रयोगों की सम्भावनाएं व्यापक हैं। सम्वादों की लघुता नाटकीय चरित्रों द्वारा उत्पन्न थ्रिल को प्रभावी बनाने में सहायता देती है। उदाहरणार्थ यह सम्वाद-योजना दृष्टव्य है :-

भुतनी (हंसती है)- आओ---आओ आओ फल मिठाई खाओ।

दोनों- आते हैं, आते हैं

फल मिठाई खाते हैं।

भुतनी- कौन

कौन

कौन ?

दोनों- हवा
हवा
हवा !
भुतनी- आओ ।
आओ
आओ !
दोनों- कहाँ
कहाँ
कहाँ ?[1]

इन सम्वादों से रहस्यात्मक सृष्टि होती है- हवा, आओ, कहाँ ऐसे शब्द हैं जो बार-बार प्रयुक्त किये जाकर भुतनी के प्राकट्य से उत्पन्न भय की व्यंजना करते हैं। नाटकीय लय को प्रकट करने में रंग-निर्देशों द्वारा दियागया मार्ग-दर्शन भी सार्थक बनता है - फर्श पर छड़ी जोर से पटकती है। तेज आवाज और संगीत। सहसा सामने राक्षस प्रकट होता है। गीता उसे देखकर डर जाती है। पूरा मंच आवाजों और रहस्य मय संगीत से भर गया है।[2]

\+ \+ \+

निर्देशकीय, लेखकीय और चरित्र व अभिनेताओं के अलग-अलग अस्तित्व बोध के कारण यह नाटक अयथार्थ फार्म के साथ खेला जाने की सम्भावनाएं मुखर करता है। वस्तुत: ~~यह नाटक अयथार्थ~~ इसमें किये गये प्रयोग शिल्प स्तर पर तो एक नये रूप की पहिचान कराते हैं लेकिन ~~इ~~ कन्टेन्ट, उसमें निहित कन्सेप्ट और समग्रत:

1- जादू की छड़ी- पृ0 15

2- वही- पृ0 22

3- ~~वही- पृ0 48~~

उसका लक्ष्य इस शिल्प में मिसफिट होने लगता है। बच्चों तक अपने अभीष्ट उद्देश्य की पहुंच ऋजु न होकर अनेक स्तरों पर संगुम्फन के अभाव में यत्न साध्य बन जाती है। फलत: बाल-मनोविज्ञान की कसौटी पर यह नाटक पूरी तरह से खरा नहीं उतरता।

लाल के बाल नाट्य-साहित्य के अध्ययन से एक तथ्य स्पष्ट होता है कि इसके माध्यम से वे इस क्षेत्र में अपनी पहिचान बनाने में असफल रहे हैं। इसका कारण इसमें उनके प्रौढ़ चिन्तन का बार-बार हावी होना है और उनकी प्रयोग दृष्टि का अनुपयोग है। उनका मन इस बाल-नाट्यसृजन में उतना नहीं रमा है जितना वयस्क नाटकों में। वे स्वयं को बच्चों की रुचि के चिन्तन -धरातल तक उतार नहीं पाये और उस मानसिकता को भी समझ नहीं सके। इसीलिये बाल जीवन की वह ऋजु अभिव्यक्ति जो 'पापा खो गये' (तेन्दुलकर), 'कल भात आयेगा' (अग्रवाल) में हुई है, उपर्युक्त नाट्य-कर्म में नहीं हो पाती। नाटक बलात् बाल नाटकों के अभिनय की समस्याओं, कल्पना-स्वातंत्र्य और नाट्य-विश्वास, अतीत और वर्तमान को जोड़ने वाले शिल्पगत प्रयोग जैसे नाट्य गत मान्यताओं के विवाद में उलझ जाता है और बालकों की सहज अभिनय व प्रेक्षण कला के बीच व्यवधान लाने लगता है। लाल का बाल-नाट्य-लेखन परिमाण व गुण- दोनों दृष्टि से अपना स्थान नहीं बना पाया है।